स्व–निर्देशित अध्ययन सामग्री
Self-Instructional Learning Material

मास्टर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत साहित्य)

एम. ए. (संस्कृत साहित्य)

प्रथम वर्ष

इतिहास काव्य

(द्वितीय प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म.प्र.) - 485334

इतिहास काव्य

संस्करण–2016–17

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :
प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

लेखक :
डॉ. प्रज्ञा मिश्रा
एसो. प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (म.प्र.) 485 331

सम्पर्क सूत्र :
निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)
दूरभाष– 07670–265460, इ–मेल– distance.gramodaya@gmail.com, website: www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :
कुलसचिव
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

कापीराइट © : महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

आभार : यह अध्ययन सामग्री संबंधित पाठ्यक्रम और विषय के लिए विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई है। अध्ययन सामग्री को सरल, सुरुचिपूर्ण और बोधगम्य बनाने की दृष्टि से अनेक स्रोतों से प्रेरणा, संदर्भ और सामग्री ली गई है। सभी के प्रति आभार। अध्ययन सामग्री में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। विश्वविद्यालय का इससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संदेश

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना मध्यप्रदेश शासन द्वारा एक पृथक अधिनियम से 1991 में सुप्रसिद्ध समाजसेवी पद्मविभूषण नानाजी देशमुख के प्रेरणा और प्रयासों से चित्रकूट में मंदाकिनी के तट पर हुई। विश्वविद्यालय का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक मानव संसाधन तैयार करना है। विगत 25 वर्षों की समर्पित सेवाओं में विश्वविद्यालय ने ज्ञान–विज्ञान के विविध आयामों पर अपने शिक्षा, शोध, प्रशिक्षण और प्रसार कार्यों से छाप छोड़ी है।

ग्रामीण क्षेत्र में संसाधनों के अभाव तथा सामाजिक–पारिवारिक परिस्थितियों के कारण निरंतरता से अध्ययन करने में बाधायें आती हैं। विश्वविद्यालय ने इस समस्या के समाधान के लिए गुणवत्तायुक्त दूरवर्ती शिक्षा को प्रत्येक ग्रामीण के घर–आँगन तक पहुँचाने का संकल्प लिया है। विश्वविद्यालय का दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील है।

मुझे प्रसन्नता है कि दूरवर्ती शिक्षा के विद्यार्थियों को स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री मुद्रित और व्यवस्थित रूप में पहुँचाये जाने का यह प्रयास न सिर्फ दूरवर्ती शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ायेगा बल्कि छात्रों को गहराई से अध्ययन करने की दिशा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति

प्रथम–इकाई

इकाई की रूपरेखा

भूमिका

उद्देश्य

प्रथम सर्ग

2.1.1 लंका अभियान के लिये समुद्र लंघन हेतु उद्यत कपीश्वर हनुमानजी के सौन्दर्य का विविध उपमाओं के माध्यम से वर्णन तथा महेन्द्र गिरि के शैल प्रवर मैनाक द्वारा हनुमान जी की आतिथ्य का निवेदन।

2.1.2 मैनाक हनुमान संभाषण

2.1.3 समुद्र लंघन के रास्ते में सिंहिका राक्षसी से मिलन एवं हनुमान द्वारा सिंहिका का वध

द्वितीय सर्ग

2.1.4 लंका प्रवेश के पूर्व हनुमान द्वारा त्रिकूट नामक पर्वत पर रुकना एवं त्रिकूट पर्वत से लंका का अवलोकन

2.1.5 सुवर्णमयी लंका के सौन्दर्य का वर्णन

2.1.6 लघुरूप में हनुमान जी द्वारा रात्रि काल में लंका में प्रवेश

सूची प्रश्न

प्रदत्त कार्य

सन्दर्भ ग्रन्थ

भूमिका

महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत 'रामायण' अखिल संस्कृत साहित्य के 'इतिहास काव्य' का स्वर्णिम परिच्छेद है। इस महान काव्य में ऋषि श्रेष्ठ वाल्मीकि द्वारा अयोध्या नरेश दशरथ नन्दन राम के जीवन के विविध पक्षों का सुन्दर काव्यात्मक विवेचन किया है। यह महान ग्रन्थ न केवल श्री राम की अनुपम गाथा है बल्कि इसके माध्यम से कवि ने तत्कालीन आर्यावर्त में विद्यमान विविध संस्कृतियों आर्य संस्कृति एवं इस संस्कृति की विशेषताओं एवं उनके संघर्ष, भौगोलिक एवं जलवायिक परिस्थितियों सामाजिक समरसता एवं सांस्कृतिक समन्वयन का अद्वितीय चित्रण किया है। सुवर्णमयी लंका के सौन्दर्य का वर्णन करते समय तो मानों कवि ने अपनी कलम ही तोड़ दी है। वास्तुशास्त्र (वास्तु विद्या) का इतना शास्त्रीय विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है। इसी तरह चाहे वह मैनाक पर्वत हो महेन्द्र गिरि अथवा त्रिकूट पर्वत हो कवि की कमनीय कल्पना प्रकृति का अनुपम चित्रण प्रस्तुत करती है। शब्द अर्थ एवं भाव का गाम्भीर्य निश्चित रूप से रामायण को संस्कृत इतिहास काव्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ बना देती है।

उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य पाठकों को वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत प्रथम दो सर्गों में वर्णित विविध विषयों का सुन्दर सरल भाषा में ज्ञान प्राप्त कराना है।

सुन्दरकाण्डम्

NOTES

प्रथमः सर्गः

हनुमान जी के द्वारा समुद्र का लंघन, मैनाक के द्वारा उनका स्वागत, सुरसा पर उनकी विजय तथा सिंहिका का वध करके उनका समुद्र के उस पार पहुंचकर लंका की शोभा देखना

2.1.1 ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः।

इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि।।1।।

तदनन्तर शत्रुओं का संहार करने वाले हनुमान जी ने रावण द्वारा हरी गयी सीता के निवास स्थान के पता लगाने के लिए उस आकाश मार्ग से जाने का विचार किया, जिस पर चारण (देवजाति विशेष) विचरा करते हैं।।1।।

दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन् कर्म वानरः।

समुद्रग्रशिरोग्रीवो गवां पतिरिवाषभौ।।2।।

कपिवर हनुमान जी ऐसा कर्म करना चाहते थे, जो दूसरों के लिए दुष्कर था तथा उस कार्य में उन्हें किसी और की सहायता भी नहीं प्राप्त थी। उन्होंने मस्तक और ग्रीबा ऊँची की। उस समय वे हृष्ट पुष्ट सांड के समान प्रतीत होने लगे।।2।।

अथवैदूर्मवर्णेषु शाद्वलेषु महाबलः।

धीरः सलिल कल्पेषु विचचार यथासुखम्।।3।।

फिर धीर स्वभाव वाले वे महाबली पवन कुमार वैदूर्यमणि (नीलम) और समुद्र के जल की भांति हरी–हरी घास पर सुखपूर्वक विचरने लगे।।3।।

द्विजान् वित्रासयन् धीमानुरसा पादपान् हरन्।

मृगांध सुबहून् निघन प्रवृद्ध इव केसरी।।4।।

उस पर्वत का जो तल प्रदेश था, वह पहाड़ों में स्वभाव से ही उत्पन्न होने वाली नीली, लाल मजीठ और कमल के से रंगबाली श्वेत तथा श्याम वर्णवाली निर्मल धातुओं से अच्छी तरह अलंकृत था।।4।।

नीललोहितमानिष्ठपद्मवर्णैः सितासितैः।

स्वभावसिद्धैर्विमलैर्धातुभिः समलंकृतम्।।5।।

उस पर्वत का जो तल प्रदेश था, वह पहाड़ों में स्वभाव से ही उत्पन्न होने वाली नीली, लाल, मजीठ और कमल के से रंगबाली श्वेत तथा श्यामवर्ण वाली निर्मल धातुओं से अच्छी तरह अलंकृत था।।5।।

NOTES

कामरूपिभिराविष्टमभीक्ष्णं सपरिच्छदैः।

यक्षकिंनरगन्धर्वैर्देवकल्पैः सपन्नगैः।।6।।

उस पर देवापम यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और नाग जो इच्छानुसार रूप धारण करने वाले थे, निरन्तर परिवार सहित निवास करते थे।।6।।

स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते।

तिष्ठन् कपिवरस्तब ह्रदे नाग इवाबभौ।।7।।

बड़े–बड़े गजराजों से भरे हुए उस पर्वत के समतल प्रदेश में खड़े हुए कपिवर हनुमान् जी वहां जलाशय में स्थित हुए विशालकाय हाथी के समान जान पड़ते थे।।7।।

स सूर्यास महेन्द्राय पवनाय स्वयम्भुवे।

भूतेभ्यधाञ्लिं कृत्वा चकार गमने मतिम।।8।।

उन्होंने सूर्य, इन्द्र, पवन, ब्रह्मा और भूतों (देवयोनि विशेषों) को भी हाथ जोड़कर उस पार जाने का विचार किया।।8।।

अञलिं प्राङ्मुख कुर्वन् पवनायात्मयोनये।

ततो हि ववुधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणां दिशम्।।9।।

फिर पूर्वाभिमुख होकर अपने पिता पवनदेव को प्रणाम किया। तत्पश्चात कार्यकुशल हनुमान जी दक्षिण दिशा में जाने के लिये बढ़ने लगे (अपने शरीर को बढ़ाने लगे)।।9।।

पुवगप्रवरैर्हृष्टः पवने कृतनिश्चयः।

ववृधे रामवृद्धयर्चं समुद्र इव पर्वसु।।10।।

बड़े–बड़े वानरों ने देखा जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार आने लगता है, उसी प्रकार, समुद्र–लंघन के लिए दृढ़ निश्चय करने वाले हनुमान जी श्रीराम की कार्य सिद्धि के लिए बढ़ने लगे।।10।।

निष्प्रमाणशरीरः संबिलङ्कयिषुरवर्णषम्।

बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम्।।11।।

समुद्र को लांघने की इच्छा से उन्होंने अपने शरीर को बेहद बढ़ा लिया और अपनी दोनों भुजाओं तथा चरणों से उस पर्वत को दबाया।।11।।

NOTES

स चचालाश्चाशु मुहूर्ते कपिपीड़ितः।

तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्वे पुष्पम शातयत् ।।12।।

कपिवर हनुमान जी के द्वारा दबाये जाने पर तुरंत ही वह पर्वत कांप उठा और दो घड़ी तक डगमगाता रहा। उसके ऊपर जो वृक्ष उगे थे, उनकी डालियों के अग्र भाग फूलों से लदे हुए थे, किन्तु उस पर्वत के हिलने से उनके वे सारे फूल झड़ गये।।12।।

तेन पादपमुक्तेन पुष्पौधेण सुगन्धिना।

सर्वतः संवृतः शैलो बभौ पुष्पममो यथा।।13।।

वृक्षों से झड़ी हुई उस सुगन्धित पुष्पराशि के द्वारा सब ओर से आच्छादित हुआ वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था, मानों वह फूलों का ही बना हुआ हो।।13।।

तेन चोलमवीर्येण पीडयमानः स पर्वतः।

सलिलं सम्प्रसुस्त्राव मदमत्त इव द्विपः।।14।।

महा पराक्रमी हनुमान जी के द्वारा दबाया जाता हुआ महेन्द्र पर्वत जल के स्रोत बहाने लगा, मानो कोई मदमत्त गजराज अपने कुम्भ स्थल से मद की धारा बहा रहा हो।।14।।

पीडयमानस्तु बलिना महेन्द्रस्तेन पर्वतः।

रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः।।15।।

बलवान् पवन कुमार के भार से दबा हुआ महेन्द्रगिरि सुनहरे, रूपहले और काले रंग के जल स्त्रोत प्रवाहित करने लगा।।15।।

मुमोच च शिलाः शैलो विशालाः समनः शिलाः।

मध्यमेनार्चिषा जुष्टो धूमराजीरिवानलः।।16।।

इतना ही नहीं जैसे मध्यम ज्वाला से मुक्त अग्नि लगातार धुआँ छोड़ रही हो, उसी प्रकार वह पर्वत मैनसिल सहित बड़ी–बड़ी शिलाएँ गिराने लगा।।16।।

हरिणा पीडयामानेन पीडयमानानि सर्वतः।

गुहाविष्टानि सत्वानि विनेटुर्विकृतैः स्वरैः।।17।।

हनुमान जी के उस पर्वत–पीड़न से पीड़ित होकर वहां के समस्त जीव गुफाओं में घुस गये और बुरी तरह से चिल्लाने लगे।।17।।

NOTES

स महान् सत्वसंनादः शैलपीडानिमिलजः।

पृथिवीं पूरयामास दिशश्चोपवनानि च।।18।।

इस प्रकार पर्वत को दबाने के कारण उत्पन्न हुआ वह जीव जन्तुओं का महान् कोलाहल पृथ्वी, उपवन और सम्पूर्ण दिशाओं में भर गया।।18।।

शिरोभिः पृप्युभिर्नागा व्यक्तस्वस्तिकलक्षणैः।

वमन्तः पावकं घोरं ददंशुर्दशनैः शिलाः।।19।।

जिनमें स्वास्तिक चिन्ह स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, उन स्थूल फणों से विषकी भयानक आग उगलते हुए बड़े–बड़े सर्प उस पर्वत की शिलाओं को अपने दांतों से डसने लगे।।19।।

तास्तदा सविषैर्दष्टाः कुपितैस्तैर्महाशिलाः।

जज्वलुः पावकोद्दीप्ता बिभिदुश्च सहस्त्रधा।।20।।

क्रोध से भरे हुए उन विषैले सांपों के काटने पर वे बड़ी–बड़ी शिलाएँ इस प्रकार जल उठीं, मानो उनमें आग लग गयी हो। उस समय उन सबके सहस्त्रों टुकड़े हो गये।।20।।

यानि त्वौषधजालानि तस्मिञ्जातानि पर्वते।

विषघनान्यपि नागानां न शेकुः शमितुं विषम्।।21।।

उस पर्वत पर बहुत सी औषधियां उगी हुई थीं, वे विष को नष्ट करने वाली होकर भी उन नागों के विष को शान्त न कर सकीं।।21।।

भिद्यतेऽयं गिरिर्भूतैरिति मत्वा तपस्विनः।

त्रस्ता विद्याधरास्तस्मादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह।।22।।

उस समय वहां रहने वाले तपस्वी विद्याघरों ने समझा कि इस पर्वत को भूत लोग तोड़ रहे हैं, इससे भयभीत होकर वे अपनी स्त्रियों के साथ वहां से ऊपर उठकर अन्तरिक्ष में चले गए।।22।।

पानभूमिगतं हित्वा हैममासवभाजनम्।

पात्राणि च महार्हाणि करकांश्च हिरण्मयान्।।23।।

लेह्यानुच्चावचान् भक्ष्यान् मांसानि विविधानिच।

आर्षभाणि च चर्माणि खड्गाश्च कनकत्सरन्।।24।।

कृतकण्ठगुणाः क्षीबा रक्तमाल्यानुलेपनाः।

रक्ताक्षाः पुष्कराक्षाश्च गगनं प्रतिपेदिरे।।25।।

NOTES

मधुपान के स्थान में रखे हुए सुवर्णमय आसवपात्र, बहुमूल्य बर्तन, सोने के कलश, भाँति–भाँति के भक्ष्य पदार्थ, चटनी नाना प्रकार के फलों के गूदे, बैलोंकी खालकी बनी हुई ढालें और सुवर्णजटित मूठवाली तलवारें छोड़कर कण्ठ में माला धारण किये, लाल रंग के फूल और अनुलेपन (चन्दन) लगाये प्रफुल्ल कमल के सदृश सुन्दर एवं लाल नेबवाले वे मतवाले विद्याधरगण भयभीत से होकर आकाश में चले गये।।23–25।।

हारनूपुर केयूरपारिहार्यधराः स्त्रियः।

विस्मिताः सस्मितास्तस्थ्युराकाशे रमर्णैः सह।।26।।

उनकी स्त्रियां गले में हार, पैरों में नूपुर, भुजाओं में बाजूबंद और कलाइयों में कंगन धारण किये आकाश में अपने पतियों के साथ मन्द–मन्द मुस्कुराती हुई चकित सी खड़ी हो गयीं।।26।।

दर्शयन्तो महाविद्यां विद्याधरमहर्षयः।

सहितास्तस्थुराकाशे वीक्षांचक्रुश्च पर्वतम्।।27।।

विद्याधर और महर्षि अपनी महाविद्या (आकाश में निराधार खड़े होने की शक्ति) का परिचय देते हुए अन्तरिक्ष में एक साथ खड़े हो गये और उस पर्वत की ओर देखने लगे।।27।।

श्रुश्रुवुश्च तदा शब्दमृषीणां भावितात्मनाम्।

चारणानां न सिद्धानां स्थितानां विमलेऽम्बरे।।28।।

उन्होंने उस समय निर्मल आकाश में खड़े हुए भावितात्मा (पवित्र अन्तःकरण वाले) महर्षियों, चारणों और सिद्धों की ये बातें सुनीं।।28।।

एष पर्वत संकाशों हनुमान् मारुतात्मजः।

तितीर्षति महावेगः समुद्रं वरुणालयम्।।29।।

अहा ! ये पर्वत के समान विशालकाय महान् वेगशाली पवनपुत्र हनुमान् जी वरुणालय समुद्र को पार करना चाहते हैं।।29।।

रामार्थेवानरार्थे च चिकीर्षन् कर्म दुष्करम्।

समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुभिच्छति।।30।।

श्री रामचन्द्र जी और वानरों के कार्य को सिद्धि के लिए दुष्कर कर्म करने की इच्छा रखने वाले ये पवन कुमार समुद्र के दूसरे तट पर पहुंचना चाहते हैं, जहां जाना अत्यन्त कठिन है।।30।।

NOTES

इति विद्याधरा वाचः श्रुत्वा तेषां तपस्विनाम्।

तमप्रमेयं ददृशुः पर्वते वानरर्षभम्।।31।।

इस प्रकार विद्याधरों ने उन तपस्वी महात्माओं की कही हुई ये बातें सुनकर पर्वत के ऊपर अतुलित बलशाली वानर शिरोमणि हनुमान जी को देखा।।31।।

दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चानलोपमः

ननाद च महानादं सुमहानिव तोयदः।।32।।

उस समय हनुमान जी अग्नि के समान जान पड़ते थे। उन्होंने अपने शरीर को हिलाया और रोएँ झाड़े तथा महान् मेघ के समान बड़े जोर–जोर से गर्जना की।।32।।

आनुपूर्व्या च वृतं तल्लाङ्गल रोमभिश्चितम्।

उत्पतिष्यन् विचिक्षेप पक्षिराज इवोरगम्।।33।।

हनुमान् जी अब ऊपर को उछलना ही चाहते थे। उन्होंने क्रमशः गोलाकार मुड़ी तथा रोमावलियों से भरी हुईं अपनी पूँछ को उसी प्रकार आकाश में फेंका, जैसे पक्षिराज गरुड़ सर्प को फेंकते हैं।।33।।

तस्य लाङ्गलमाविद्धमविवेगस्य पृष्ठतः।

ददृशे गरुडेनेव ह्रियमाणो महोरगः।।34।।

अत्यन्त वेगशाली हनुमान् जी के पीछे, आकाश में फैली हुई उनकी कुछ–कुछ मुड़ी हुयी पूंछ गरुड़ के द्वारा ले जाये जाते हुए महान् सर्प के समान दिखाई देती थी।।34।।

बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसंनिभौ।

आससाद् कपिः कटयां चरणौ संचुकोच च।।35।।

उन्होंने अपनी विशाल परिध के समान भुजाओं को पर्वत पर जमाया। फिर ऊपर के सब अंगों को इस तरह सिकोड़ लिया कि वे कटि की सीमा में ही आ गये, साथ ही उन्होंने दोनों पैरों को भी समेट लिया।।35।।

संहृत्य च भुजौश्रीमांस्तप्यैव च शिरोधराम्।

तेजः सत्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान्।।36।।

तत्पश्चात् तेजस्वी और पराक्रमी हनुमान् जी ने अपनी दोनों भुजाओं और गर्दन को भी सिकोड़ लिया। इस समय उनमें तेज, बल और पराक्रम–सभी का आवेश हुआ।।36।।

NOTES

मार्गमालोकयन् दूरा दर्ध्वप्रणिहितेक्षणः।

रुरोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन्।।37।।

उन्होंने अपने लम्बे मार्ग पर दृष्टि दौड़ाने के लिए नेत्रों को ऊपर उठाया और आकाश की ओर देखते हुए प्राणों को हृदय में रोका।।37।।

पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः।

निकुच्य कर्णौ हनुमानुत्पतिष्यन् महाबलः।।38।।

वानरान् वानरश्रेष्ठ इदं चचनमब्रवीत्।

इस प्रकार ऊपर को छलांग मारने की तैयारी करते हुए कपि श्रेष्ठ महाबली हनुमान् ने अपने पैरों को अच्छी तरह से जमाया और कानों को सिकोड़कर उन वानर शिरोमणि ने अन्य वानरों से इस प्रकार कहा।।38।।

यथा राघवनिर्मुक्तः शरःश्वसनविक्रमः।।39।।

गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लंका रावण पालिताम्।

जैसे श्री रामचन्द्र जी का छोड़ा हुआ वाण वायुवेग से चलता है, उसी प्रकार मैं रावण द्वारा पालित लंका पुरी में जाऊँगा।।39।।

नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम्।।40।।

अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम्।

यदि लंका में जनकनन्दिनी सीता को नहीं देखूंगा तो इसी वेग से मैं स्वर्ग लोक में चला जाऊँगा।।40।।

यदि वा त्रिदिवे सीतां न द्रष्यामि कृतश्रमः।।41।।

बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्।

इस प्रकार परिश्रम करने पर यदि मुझे स्वर्ग में भी सीता का दर्शन नहीं होगा तो राक्षसराज रावण को बांधकर लाऊँगा।।41।।

सर्वथा कृतकायोऽहमेष्यामि सह सीतमा।।42।।

आनयिष्यामि व लंका समुत्पाटय सरावणाम्।

सर्वथा कृतकृत्य होकर मैं सीता के साथ लौटूंगा अथवा रावण सहित लंकापुरी को ही उखाड़ कर लाऊँगा।।42।।

NOTES

एवमुक्त्वा तु हनुमान् वानरो वानरोत्तमः।।43।।

उत्पपाताथ वेगेन, वेगवान विचारयन्।

सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः।।44।।

ऐसा कहकर वेगशाली वानर प्रवर श्री हनुमान् जी ने विघ्नबाधाओं का कोई विचार न करके बड़े वेग से ऊपर की ओर छलांग मारी। उस समय उन वानर शिरोमणि ने अपने को साक्षात् गरुड़ के समान ही समझा।।43–44।।

समुत्पतति वेगात् तु वेगात् ते नगरोहिणः।

संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः।।45।।

जिस समय वे कूदे, उस समय उनके वेग से आकृष्ट हो पर्वतपर उगे हुए सब वृक्ष उखड़ गये और अपनी सारी डालियों को समेटकर उनके साथ ही सब ओर से वेग पूर्वक उड़ चले।।45।।

स मत्तकोयष्टिभकान् पादपान् पुष्पशालिनः।

उद्वहन्नुरुवेगेन जगाम विमलेडम्बरे।।46।।

वे हनुमान जी मतवाले कोयष्टि आदि पक्षियों से युक्त, बहुसंख्यक पुष्पशोभित वृक्षों को अपने महान् वेग से ऊपर की ओर खींचते हुए निर्मल आकाश में अग्रसर होने लगे।।46।।

ऊरुवेगात्थिता वृक्षा मुहूर्ते कपिमन्वयुः।

प्रस्थितं दीघ्रमध्वानं स्वबन्धुमिव बान्धवाः।।47।।

उनकी जांघों के महान् वेग से ऊपर को उठे हुए वृक्ष एक मुर्हूत तक उनके पीछे–पीछे इस प्रकार गये, जैसे दूर–देश के पथ पर जाने वाले अपने भाई बन्धु को उसके बन्धु बान्धव पहुंचाने जाते हैं।।47।।

तमूरुवेगोन्मथिताः सालाश्वान्ये नगोत्तमाः।

अनुजग्मुर्हनूमन्तं सैन्या इव महीपतिम्।।48।।

हनुमान जी की जांघों के वेग से उखड़े हुए साल तथा दूसरे–दूसरे श्रेष्ठ वृक्ष उनके पीछे–पीछे उसी प्रकार चले, जैसे राजा के पीछे उसके सैनिक चलते हैं।।48।।

सुपुष्पिताग्रैर्बहुभिः पादपैरन्वितः कपिः।

हनुमान् पर्वताकारों बभूवाद्भुतदर्शनः।।49।।

NOTES

जिनकी डालियों के अग्र भाग फूलों से सुशोभित थे, उन बहुतेरे वृक्षों से संयुक्त हुए पर्वताकार हनुमान जी अद्भुत शोभा से सम्पन्न दिखाई दिये।।49।।

सारवन्तोऽथ ये वृक्षा न्यमज्जंल्लवणाम्भसि।

भयादिव महेन्द्रस्य पर्वता वरुणालये।।50।।

उन वृक्षों में से जो भारी थे, वे थोड़ी ही देर में गिरकर क्षर समुद्र में डूब गये। ठीक उसी तरह, जैसे कितने ही पंखधारी पर्वत देवराज इन्द्र के भय से वरुणालय में निमग्न हो गये थे।।50।।

स नानाकुसुमैः कीर्णः कपिः साङ्कुरकोरकैः।

शुशुभे मेघसंकाशः खद्योतैरिव पर्वतः।।51।।

मेघ के समान विशालकाय हनुमान जी अपने साथ खींचकर आये हुए वृक्षों के अंकुर और कोर सहित फूलों से आच्छादित हो जुगुनुओं की जगमगाहट से युक्त पर्वत के समान शोभा पाते थे।।52।।

विमुक्तास्तस्य वेगेन मुक्त्वा पुष्पाणि ते द्रुमाः।

व्यवशीर्यन्त सलिले निवृत्ताः सुहृदो यथा।।52।।

वे वृक्ष जब हनुमान जी के वेग से मुक्त हो जाते, उनके आकर्षण से छूट जाते, तब अपने फूल बरसाते हुए इस प्रकार समुद्र के जल में डूब जाते थे, जैसे सुहृद वर्ग के लोग परदेश जाने वाले अपने किसी बन्धु को दूर तक पहुंचाकर लौट आते हैं।।52।।

लघुत्वेनोपपन्नं तद् विचित्रं सागरेऽपतत्।

द्रुमाणां विविधं पुष्पं कपिवायुसमीरितम्।

ताराचितमिवाकाशं प्रबभौ स महार्णवः।।53।।

हनुमान जी के शरीर से उठी हुई वायु से प्रेरित हो वृक्षों को भांति–भांति के पुष्प अत्यन्त हल्के होने के कारण जब समुद्र में गिरते थे, तब डूबते नहीं थे। इसलिए उनकी

विचित्र शोभा होती थी। उन फूलों के कारण वह महासागर तारों से भरे हुए आकाश के समान सुशोभित होता था।।53।।

NOTES

पुष्पौधेण सुगन्धेन नानावर्णेन वानरः।

बभौ मेघ इवोद्यन् विद्युद्गणविभूषितः।।54।।

अनेक रंग की सुगन्धित पुष्पराशि से उपलक्षित वानर–वीर हनुमान जी बिजली से सुशोभित होकर उठते हुए मेघ के समान जान पड़ते थे।।54।।

तस्य वेगसमुद्भूतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत।

ताराभिरिव रामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम्।।55।।

उनके वेग से झड़े हुए फूलों के कारण समुद्र का जल उगे हुए रमणीय तारों से खचित आकाश के समान दिखायी देता था।। 55।।

तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ।

पर्वताग्राद विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ।।56।।

आकाश में फैलायी गयी उनकी दोनों भुजायें ऐसी दिखाई देती थीं, मानों किसी पर्वत के शिखर से पांच फनवाले दो सर्प निकले हुए हों।।56।।

पिबन्निच बभौ चापि सोर्मिजालं महार्णवम्।

पिपासुखि चाकाशं ददृशे स महाकपिः।।57।।

उस समय महाकवि हनुमान ऐसे प्रतीत होते थे, मानो तरंगमालाओं सहित महासागर को पी रहे हों। वे ऐसे दिखाई देते थे, मानो आकाश को भी पी जाना चाहते हों।।57।।

तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमागानुसारिणः।

नयने विप्रकाशेते पर्वतस्याविवानलौ।।58।।

वायु के मार्ग का अनुसरण करने वाले हनुमान जी के बिजली की सी चमक पैदा करने वाले दोनों नेत्र ऐसे प्रकाशित हो रहे थे, मानों पर्वत पर दो स्थानों में लगे हुए दावानल दहक रहे हों।।58।।

पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले।

चक्षुषी सम्प्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ।।59।।

पिंगल नेत्रवाले वानरों में श्रेष्ठ हनुमान जी की दोनों गोल बड़ी–बड़ी और पीले रंग की आंखे चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशित हो रही थीं।।59।।

मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ।

संध्यया समभिस्पृष्टं यथा स्यात् सूर्यमण्डलम्।।60।।

लाल–लाल नासिका के कारण उनका सारा मुंह लाली लिये हुए था, अतः वह संध्या काल से संयुक्त सूर्यमण्डल के समान सुशोभित होता था।।60।।

NOTES

लाङ्गलंच समाविद्धं पल्लवमानस्य शोभते।

अम्बरे वायुपुत्रस्य शक्रध्वज इवोच्छ्रितम्।।61।।

आकाश में तैरते हुए पवनपुत्र हनुमान की उठी हुई टेढ़ी पूंछ गोलाकार मुड़ी हुई थी। इसलिए वे परिधि से घिरे हुए सूर्यमण्डल के समान सुशोभित होता था। उनकी टेढ़ी पूंछ इन्द्र की ऊंची ध्वजा के समान जान पड़ती थी।।61।।

लाङ्लचक्रो हनुमाञ्शुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः।

व्यरोचत महाप्राज्ञः परिवेषीव भास्करः।।62।।

महाबुद्धिमान पवनपुत्र हनुमान जी की दाढ़ें सफेद थीं और पूंछ, गोलाकार मुड़ी हुई थी। इसलिये वे परिधि से घिरे सूर्य के समान जान पड़ते थे।।62।।

स्फिग्देशेनातिताम्रेण रराज स महाकपिः।

महता दारितेनेव गिरिर्गैरिकधातुना।।63।।

उनकी कमर के नीचे का भाग बहुत लाल था। इससे वे महाकपि हनुमान फटे हुए गेरू से युक्त विशाल पर्वत के समान शोभा पाते थे।।63।।

तस्य वानरसिंहस्य पल्लवमानवस्य सागरम्।

कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति।।64।।

ऊपर–ऊपर से समुद्र को पार करते हुए वानर सिंह हनुमान की कांख से होकर निकली हुई वायु बादल के समान गरजती थी।।64।।

खे यथा निपतत्मुल्का उत्तरान्ताद विनिः सृता।

दृश्यते सानुबन्धा च तथा स कपिकुंचरः।।65।।

जैसे ऊपर की दिशा से प्रकट हुई, पुच्छयुक्त उल्का आकाश में जाती देखी जाती है, उसी प्रकार अपनी पूंछ के कारण कपिश्रेष्ठ हनुमान जी भी दिखाई देते थे।।65।।

पतत्पतङ्गसंकाशो व्यापतः शुशुभे कपिः।

प्रबृद्ध इव मातङ्गः कक्ष्यया बध्यमानया।।66।।

चलते हुए सूर्य के समान विशालकाय हनुमान जी अपनी पूंछ के कारण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो कोई बड़ा गजराज अपनी कमर में बंधी हुई रस्सी से सुशोभित हो रहा हो।।66।।

NOTES

उपरिष्टाच्छरीरेण च्छायया चावगादया।

सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत् तदा कपिः।।67।।

हनुमान जी का शरीर समुद्र के ऊपर–ऊपर चल रहा था और उनकी परछाईं जल में डूबी हुई सी दिखाई देती थी। इस प्रकार शरीर और परछाई दोनों से उपलक्षित हुए वे कपिवर हनुमान् समुद्र में पड़ी हुई उस नौका के समान प्रतीत होते थे, जिसका ऊपरी भाग (पाल) वायु से परिपूर्ण हो और निम्नभाग समुद्र के जल से लगा हुआ हो।।67।।

यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः।

स तु तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते।।68।।

वे समुद्र के जिस–जिस भाग में जाते थे, वहां–वहां उनके अंग के वेग से उत्ताल तरंगे उठने लगती थीं। अतः वह भाग उन्मत सा दिखाई देता था।।68।।

सागरस्योर्मिजालानामुरसा शैलवर्ष्मणाम्।

अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः।।69।।

महान वेगशाली महाकपि हनुमान पर्वतों के समान ऊँची महासागर की तरंगमालाओं को अपनी छाती से चूर–चूर करते हुए आगे बढ़ रहे थे।।69।।

कपिवातश्च बलवान् मेघवातश्च निर्गतः।

सागरं भीमनिह्रदिं कम्पयामासतुर्मृशम्।।70।।

कपिश्रेष्ठ हनुमान के शरीर से उठी हुई तथा मेघों की घटा में व्याप्त हुई प्रबल वायु ने भीषण गर्जना करने वाले समुद्र में भारी हलचल मचा दी।।70।।

विकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि।

पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी।।71।।

वे कपि केसरी अपने प्रचण्ड वेग से समुद्र में बहुत सी ऊँची–ऊँची तरंगों को आकर्षित करते हुए इस प्रकार उड़े जा रहे थे, मानो पृथ्वी और आकाश दोनों को विक्षुब्ध कर रहे हैं।।71।।

मेरुमन्दरसंकाशानुद्गतान् सुमहार्णवे।

अत्यक्रामन्यहावेगस्तरङ्गान् गणयन्निव।।72।।

वे महान् वेगशाली वानरवीर उस महासमुद्र में उठी हुई सुमेरु और मन्दराचल के समान उत्ताल तरंगों की मानों गणना करते हुए आगे बढ़ रहे थे।।72।।

NOTES

तस्य वेगसमुद्धुष्टं जलं सजलदं तदा।

अम्बरस्यं विबप्राजे शरदभ्रमिवाततम्।।73।।

उस समय उनके वेग से ऊँचे उठकर मेघमण्डल के साथ आकाश में स्थित हुआ समुद्र का जल शरदकाल के फैले हुए मेघों के समान जान पड़ता था।।73।।

तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा।

वस्त्रायकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम्।।74।।

जल हट जाने के कारण समुद्र के भीतर रहने वाले मगर, नाकें, मछलियां और कछुए साफ साफ दिखाई देते थे। जैसे वस्त्र खींच लेने पर देहधारियों के शरीर नंगे दीखने लगते हैं।।74।।

क्रमप्राण समीक्ष्याथ भुजगाः सागरंगमाः।

व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्णमिव मेनिरे।।75।।

समुद्र में विचरने वाले सर्प आकाश में जाते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को देखकर उन्हें गरुड़ के ही समान समझने लगे।।75।।

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता।

छाया वानरसिंहस्य जवे चारुतराभवत्।।76।।

उन कपि श्रेष्ठ को बिना थकावट के सहसा आगे बढ़ते देख नाग यक्ष और नाना प्रकार के राक्षस सभी उनकी स्तुति करने लगे।।76।।

श्वेताभ्रघनराजीव वायुपुत्रानुगामिनी।

तस्य सा शुशुभे छाया पतिता लवणाम्भसि।।77।।

खारे पानी के समुद्र में पड़ी हुई पवनपुत्र हनुमान का अनुसरण करने वाली उनकी वह छाया श्वेत बादलों की पंक्ति के समान शोभा पाती थी।।77।।

शुशुभे स महातेजा महाकायो महाकपिः।

वायुमार्गे निरालम्बे पक्षवानिव पर्वतः।।78।।

वे परम तेजस्वी महाकाय महाकपि हनुमान आलम्बनहीन आकाश में पंखधारी पर्वत के समान जान पड़ते थे।।78।।

NOTES

येनासौ याति बलवान् वेगेन कपिकुक्षरः।

तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः।।79।।

वे बलवान् कपिश्रेष्ठ जिस मार्ग से वेगपूर्वक निकल जाते थे, उस मार्ग से संयुक्त समुद्र सहसा कटौते या कड़ाह के समान हो जाता था (उनके वेग से उठी हुई वायु के द्वारा वहां का जल हट जाने से वह स्थान कठौते आदि के समान गहरा सा दिखाई पड़ता था)।।79।।

आपाते पक्षिसङ्घानां पक्षिराज इव व्रजन्।

हनुमान मेघजालानि प्रकर्षन् मारुतो यथा।।80।।

पक्षी समूहों के उड़ने के मार्ग में पक्षिराज गरुड़ की भांति जाते हुए हनुमान वायु के समान मेघमालाओं को अपनी ओर खींच लेते थे।।80।।

पाण्डुरारुणवर्णानि नीलमास्त्रष्ठकनि च।

कपिनाऽऽकृष्य माणानि महाभ्राणि चकाशिरे।।81।।

हनुमान जी के द्वारा खींचे जाते हुए वे श्वेत, अरुण, नील और मजीठ के से रंगवाले बड़े–बड़े मेघ वहां बड़ी शोभा पाते थे।।81।।

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः।

प्रच्छन्नश्च चन्द्रमा इव दृश्यते।।82।।

वे बारंबार बादलों के समूह में घुस जाते और बाहर निकल आते थे। इस तरह छिपते और प्रकाशित होते हुए चन्द्रमा के समान दृष्टिगोचर होते थे।।82।।

पल्लवमानं तु तं दृष्ट्वा पल्लवगं त्वरितं तदा।

ववृषुस्तत्र पुष्पाणि देवगन्धर्वचारणाः।।83।।

उस समय तीव्र गति से आगे बढ़ते हुए वानरवीर हनुमान जी को देखकर देवता, गन्धर्व और चारण उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे।।83।।

तताप नहि तं सूर्यः पल्वन्तं वानरेश्वरम्।

सिषेवे च तदा वायू रामकार्मार्थसिद्धये।।84।।

वे श्रीरामचन्द्र जी का कार्य सिद्ध करने के लिए जा रहे थे, अतः उस समय वेग से जाते हुए वानरराज हनुमान को सूर्यदेव ने ताप नहीं पहुंचाया और वायुदेव ने भी उनकी सेवा की।।84।।

NOTES

ऋषयस्तुष्टुवुश्चैनं पल्लवमानं विहायसा।

जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशंसन्तो वनौकसम्।।85।।

आकाश मार्ग से यात्रा करते हुए वानरवीर हनुमान् की ऋषि–मुनि स्तुति करने लगे तथा देवता और गन्धर्व उनकी प्रशंसा के गीत गाने लगे।।85।।

नागाश्च तुष्टुर्थक्षा रक्षांसि विविधानिच

प्रेक्ष्य सर्वे कपिवरं सहसा विगतकल्मम्।।86।।

उन कपिश्रेष्ठ को बिना थकावट के सहसा आगे बढ़ते देख नाग, यक्ष और नाना प्रकार के राक्षस सभी उनकी स्तुति करने लगे।।86।।

तस्मिन् पल्लवगशार्दूले पल्लवमाने हनूमति।

इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः।।87।।

जिस समय कपि केसरी हनुमान जी उछलकर समुद्र पार कर रहे थे, उस समय इक्ष्वाकुकुल का सम्मान करने की इच्छा से समुद्र ने विचार किया।।87।

साहाम्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः।

करिष्यामि भविष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षताम्।।88।।

यदि मैं वानरराज हनुमान जी की सहायता नहीं करूंगा तो बोलने की इच्छा वाले सभी लोगों की दृष्टि में मैं सर्वथा निन्दनीय हो जाऊँगा।।88।।

अहमिक्ष्वाकुनाथेन सगरेण विवर्धितः।

इक्ष्वाकुसचिक्श्चायं तन्नार्हत्यवसादितुम्।।89।।

मुझे इक्ष्वाकुकुल के महाराज सगर ने बढ़ाया था। इस समय ये हनुमान जी भी इक्ष्वाकुवंशी वीर श्रीरघुनाथ जी की सहायता कर रहे हैं, अतः इन्हें इस यात्रा में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होना चाहिए।।89।।

तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः।

शेषं च ममि विश्रान्तः सुखी सोऽतितरिष्यति।।90।।

मुझे ऐसा कोई उपाय करना चाहिए, जिससे वानरवीर यहां कुछ विश्राम कर लें। मेरे आश्रम में विश्राम कर लेने पर मेरे शेष भाग को ये सुगमता से पार कर लेंगे।।90।।

इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि।

NOTES

हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम्।।91।।

यह शुभ विचार करके समुद्र ने अपने जल में छिपे हुए सुवर्णमय गिरिश्रेष्ठ मैनाक से कहा।।91।।

त्वमिहासुरसङ्घानां देवराज्ञा महात्मना।

पातालनिलयानां हि परिधः संनिवेशितः।।92।।

शैल प्रवर ! महामना देवराज इन्द्र ने तुम्हें यहां पातालवासी असुर समूहों के निकलने के मार्ग को रोकने के लिए परिधरूप से स्थापित किया है।।92।।

त्वमेषां ज्ञातवीर्माणां पुनरेवोत्पतिष्यताम्।

पातालस्याप्रमेयस्य द्वारमावृत्य तिष्ठसि।।93।।

इन असुरों का पराक्रम सर्वत्र प्रसिद्ध है। वे फिर पाताल से ऊपर को आना चाहते हैं, अतः उन्हें रोकने के लिए तुम अप्रमेय पाताल लोक के द्वार को बंद करके खड़े हो।।93।।

तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव शक्तिस्ते शैल वर्धितम्।

तस्मात् संचोदयामि तामुत्तिष्ठ गिरिसत्तम।।94।।

शैल ! ऊपर नीचे और अगल–बगल में सब ओर बढ़ने की तुम में शक्ति है। गिरिश्रेष्ठ ! इसीलिए मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम ऊपर की ओर उठो।।94।।

स एष कपिशार्दूलस्त्वामुपर्मेति वीर्यवान्।

हनुमान् रामकार्यार्थी भीमकर्मा खमाप्लुतः।।95।।

'देखों, ये पराक्रमी कपिकेसरी हनुमान् तुम्हारे ऊपर होकर जा रहे हैं। ये बड़ा भयंकर कर्म करने वाले हैं, इस समय श्रीराम का कार्य सिद्ध करने के लिये इन्होंने आकाश में छलाँग मारी है।।95।।

अस्य साह्म मया कार्यमिक्ष्वाकुकुलवर्तिनः।

मम इक्ष्वाकवः पूज्याः परं पूज्यतमास्तव ।।96।।

ये इक्ष्वाकुवंशी राम के सेवक हैं, अतः मुझे इनकी सहायता करनी चाहिए। इक्ष्वाकुवंश के लोग मेरे पूजनीय हैं और तुम्हारे लिए तो परम पूज्यनीय हैं।।96।।

कुरू साचिव्यमस्माकं न नः कार्यमतिक्रमेत्।

कर्तव्यमकृतं कार्यं सतां मन्युमुदीरयेत्।।97।।

अतः तुम हमारी सहायता करो। जिससे हमारे कर्तव्य कर्म का (हनुमान जी के सत्कार रूपी कार्य का) अवसर बीत न जाय। यदि कर्तव्य का पालन नहीं किया जाय तो वह सत्पुरूषों के क्रोध को जगा देता है।।97।।

NOTES

सलिला दूर्ध्वमुत्तिष्ठ तिष्ठत्वेष कपिस्त्वयि।

अस्माकमविधिधैव पूज्यश्च पल्लवतां वरः।।98।।

इसलिए तुम पानी से ऊपर उठो, जिससे ये छलांग मारने वालों में श्रेष्ठ कपिवर हनुमान् तुम्हारे ऊपर कुछ काल तक ठहरें–विश्राम करें। वे हमारे पूजनीय अतिथि भी हैं।।98।।

चामीकरमहानाभ देवगन्धर्वसेवित।

हनूमास्त्वमि विश्रान्तस्ततः शेषं गमिष्यति।।99।।

देवताओं और गन्धर्वों द्वारा सेवित तथा सुवर्णमय विशाल शिखरवाले मैनाक ! तुम्हारे ऊपर विश्राम करने के पश्चात् हनुमान जी शेष मार्ग को सुखपूर्वक तय कर लेंगे।।99।।

काकुत्स्थस्यानृशंस्यं च मैथिल्याश्च विवासनम्।

श्रमं च पल्लवगेन्द्रस्य समीक्ष्योत्धातुमर्हसि।।100।।

ककुत्स्थवंशी श्री रामचन्द्र जी की दयालुता, मिथिलेस कुमारी सीता का परदेश में रहने के लिये विवश होना तथा वानरराज हनुमान का परिश्रम देखकर तुम्हें अवश्य ऊपर उठना चाहिए'।।100।।

हिरण्यगर्भो मैनाको निशभ्य लवणाम्भसः।

उत्पपात जलात् तूर्णं महाद्रुमलतावृतः।।101।।

यह सुनकर बड़े–बड़े वृक्षों और लताओं से आवृत सुवर्णमय मैनाक पर्वत तुरंत ही क्षार समुद्र के जल से ऊपर को उठ गया।।101।।

स सागरजलं भित्वा वभूवात्युच्छ्रितस्तदा।

मथा जलधरं भित्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः।।102।।

जैसे उद्दीप्त किरणों वाले दिवाकर (सूर्य) मेघों के आवरण को भेदकर उदित होते हैं, उसी प्रकार उस समय महासागर के जल का भेदन करके वह पर्वत बहुत ऊँचा उठ गया।।102।।

NOTES

स महात्मा मुहूर्तेन पर्वतः सलिलावृतः।

दर्शयामास श्रृङ्गाणि सागरेण नियोजितः।।103।।

समुद्र की आज्ञा पाकर जल में छिपे रहने वाले उस विशाल काम पर्वत ने दो ही घड़ी में हनुमान जी को अपने शिखरों का दर्शन कराया।।103।।

शातकुम्भमयैः श्रृङ्गैः सकिंनरमहोरगैः।

आदित्योदयसंकाशैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम्।।104।।

उस पर्वत के वे शिखर सुवर्णमय थे। उन पर किन्नर और बड़े–बड़े नाग निवास करते थे। सूर्योदय के समान तेजः– पुत्र से विभूषित वे शिखर इतने ऊँचे थे कि आकाश में रेखा–सी खींच रहे थे।।104।।

तस्य जाम्बूनदैः श्रृङ्गैः पर्वतस्य समुत्थितैः।

आकाशं शस्त्रसंकाशमभवत् काञ्चनप्रथम्।।105।।

उस पर्वत के उठे हुए सुवर्णमय शिखरों के कारण शस्त्र के समान नील वर्णवाला आकाश सुनहरी प्रभा से उद्भासित होने लगा।।105।।

जातरुपमयैः श्रृङ्गैर्भ्राजमानैमैहाप्रभैः।

आदित्यशतसंकाशः सोऽभवद् गिरिसत्तमः।।106।।

उन परम कान्तिमान् और तेजस्वी सुवर्णमय शिखरों से वह गिरिश्रेष्ठ मैनाक सैकड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान हो रहा था।।106।।

समुत्थितमसङ्गेन हनूमानग्रतः स्थितम्।

मध्ये लवणतोयस्य विघ्नोऽयमिति निश्चितः।।107।।

अतः वायु जैसे क्षार समुद्र के बीच में अविलम्ब उठकर सामने खड़े हुए मैनाक को देखकर हनुमान जी ने मन ही मन निश्चित किया कि यह कोई विघ्न उपस्थित हुआ है।।107।।

स तमुच्छ्रितमत्यर्थे महावेगो महाकपिः।

उरसा पातयामास जीमूतमिव मारुतः।।108।।

अतः वायु जैसे बादल को छिन्न–भिन्न कर देती है, उसी प्रकार महान् वेगशाली महाकपि हनुमान ने बहुत ऊँचे उठे हुए मैनाक पर्वत के उस उच्चतर शिखर को अपनी छाती के धक्के से नीचे गिरा दिया।।108।।

NOTES

स तदासादितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः।

वुद्ध्वा तस्य हरेर्वेगं सहर्ष च ननाद च।।109।।

इस प्रकार कपि वर हनुमान जी के द्वारा नीचा देखने पर उनके उस महान वेग का अनुभव करके पर्वतश्रेष्ठ मैनाक बड़ा प्रसन्न हुआ और गर्जना करने लगा।।109।।

तमाकाशगतं वीरमाकाशे समुपस्थितः।

प्रीतोह्रष्टमना वाक्यमूव्रवीत् पर्वतः कपिम्।।110।।

मानुपं धारयन् रूपमात्मनः शिखरे स्थितः।

तब आकाश में स्थित हुए उस पर्वत ने आकाशगत वीर वानर हनुमान जी से प्रसन्नचित होकर कहा। वह मनुष्यरूप धारण करके अपने ही शिखर पर स्थित हो इस प्रकार बोला।।110।।

दुष्करं कृतवान् कर्म त्वमिदं वानरोत्तम।।111।।

निपत्य मम श्रृङ्गेषु सुखं विश्रम्य गम्यताम्।

वानर शिरोमणे ! आपने यह दुष्कर कर्म किया है। अब उतरकर मेरे इन शिखरों पर सुखपूर्वक विश्राम कर लीजिये, फिर आगे की यात्रा कीजियेगा।।111।।

राघवस्य कुले जातैरुदधिः परिवर्धितः।।112।।

सत्वां रामहिते युक्तं प्रत्यर्चयति सागरः।

श्री रघुनाथ जी के पूर्वजों ने समुद्र की वृद्धि की थी, इस समय आप उनका हित करने में लगे हैं, अतः समुद्र आपका सत्कार करना चाहता है।।112।।

कृतेच प्रतिकर्तव्यमेष धर्मः सनातनः।।113।।

सोऽयं तत्प्रतिकारार्थी त्वत्वः सम्मानमर्हति।

किसी ने उपकार किया हो तो बदले में उसका भी उपकार किया जाय। यह सनातन धर्म है। इस दृष्टि से प्रत्युपकार करने की इच्छावला यह सागर आप से सम्मान पाने के योग्य है। (आप इसका सत्कार ग्रहण करें, इतने से ही इसका सम्मानहो जाएगा)।।113।।

त्वचिकित्तमनेनाहं बहुमानात् प्रचोदितः।।114।।

योजनानां शतं चापि कपिरेष स्वमाप्लुतः।

तव सानुषु चिश्रान्तः शेषः प्रक्रमतामिति।।115।।

NOTES

'आपके सत्कार के लिए समुद्र ने बड़े आदर से मुझे नियुक्त किया है और कहा है– 'इन कपिवर हनुमान ने सौ योजन दूर जाने के लिए आकाश में छलांग मारी है, अतः कुछ देर तक तुम्हारे शिखरों पर ये विश्राम कर लें, फिर शेष भाग का लंघन करेंगे''।।114–115।।

तिष्ठत्वं हशिार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम्।

तदिदं गन्धवत स्वादु कन्दमूलफलं बहु।।116।।

तदाखाद्यं हरिश्रेष्ठ विश्रान्तोऽथ गमिष्यसि।

अतः कपिश्रेष्ठ ! आप कुछ देर तक मेरे ऊपर विश्राम कर लीजिए फिर जाइयेगा। इस स्थान पर में बहुत से सुगन्धित और सुस्वादु कन्दु, मूल तथा फल हैं। वानर शिरोमणे। इनका आस्वादन करके थोड़ी देर तक सुस्ता लीजिए। उसके बाद आगे की यात्रा कीजिएगा।।116।।

2.1.2 अस्माकमपि सम्बन्धः कपिमुख्य बयास्ति वै।

प्रख्यातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रहः।।117।।

कपिवर ! आपके साथ हमारा भी कुछ सम्बन्ध है। आप महान् गुणों का संग्रह करने वाले और तीनों लोकों में विख्यात हैं।।117।।

वेगवन्तः पल्लवन्तों ये पल्लवगा मारुतात्मज।

तेषां मुख्यतमं मन्ये त्वामहं कपिकुञ्जर।।118।।

कपिश्रेष्ठ पवननन्दन। जो–जो वेगशाली और छलांग मारने वाले वानर हैं, उन सबमें मैं आप ही को श्रेष्ठतम मानता हूँ।।118।।

अतिथिः किल पूजार्हः प्राकृतोऽपि विजानता।

धर्मे जिज्ञासमानेन किं पुनर्यादृशों भवान्।।119।।

धर्म की जिज्ञासा रखने वाले विज्ञ पुरुष के लिए एक साधारण अतिथि भी निश्चय ही पूजा के योग्य माना गया है। फिर आप जैसे असाधारण शौर्यशाली पुरूष कितने सम्मान के योग्य हैं, इस विषय में तो महना क्या है।।119।।

त्वंहि देववरिष्ठस्य मारुतस्य महात्मनः।

पुत्रस्तस्यैव वेगेन सदृशः कपिकुञ्जर।।120।।

कपिश्रेष्ठ ! आप देवशिरोमणि महात्मा वायु के पुत्र हैं और वेग में भी उन्हीं के समान हैं।।120।।

NOTES

पूजिते त्वमि धर्मज्ञे पूजां प्राप्नोति मारुतः।

तस्मात् त्वं पूजनीयों में श्रृणु चाप्यत्र कारणम्।।121।।

आप धर्म के ज्ञाता हैं, आपकी पूजा होने पर साक्षात् वायुदेव को पूजन हो जायेगा। इसलिए आप जैसे माननीय पुरूष के दर्शन से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ।।121।।

पूर्वे कृतयुगे तात पर्वताः पक्षिणोऽभवन्।

तेऽपि जग्मुर्दिशः सर्वा गरूड़ा इव वेगिनः।।122।।

तात ! पूर्वकाल के सत्य युग की बात है। उन दिनों पर्वतों के भी पंख होते थे। ये भी गरूड़ के समान वेगशाली होकर सम्पूर्ण दिशाओं में उड़ते फिरते थे।।122।।

ततस्तेषु प्रयातेषु देवसङ्घाः सहर्षिभिः।

भूतानि च भयं जग्मुस्तेषां पतनशंङ्कया।।123।।

उनके इस तरह वेगपूर्वक उड़ने और आने–जाने पर देवता, ऋषि और समस्त प्राणियों को उनके गिरने की आशङ्का से बड़ा भय होने लगा।।123।।

ततः क्रुद्धः सहस्त्राक्षः पर्वतानां सतक्रतुः।

पक्षाश्चिच्छेद वज्रेण ततः रातसहस्त्रशः।।124।।

इससे शहस्त्र नेत्रों वाले देवराज इन्द्र कुपित हो उठे और उन्होंने अपने वज्र से लाखों पर्वतों के पंख काट डाले।।124।।

स मामुपगतः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य देवराट्।

ततोऽहं सहसा क्षिप्तः श्वसनेन महात्मना।।125।।

उस समय कुपित देवराज इन्द्र वज्र उठाये मेरी ओर भी आये, किंतु महात्मा वायु ने सहसा मुझे इस समुद्र में गिरा दिया।।125।।

अस्मिंल्लवणतोयेच प्रक्षिप्तः पल्लवगोत्तम।

गुप्तपक्षः समग्रश्च तव पित्राभिरक्षितः।।126।।

वानर श्रेष्ठ ! इस क्षार समुद्र में गिराकर आपके पिता ने मेरे पंखों की रक्षा कर ली और मैं अपने सम्पूर्ण अंश से सुरक्षित बच गया।।126।।

NOTES

ततोऽहं मानयामि त्वां मान्योऽसिमय मारुते।

तथा ममैष सम्बन्धः कपिमुख्य महागुणः।।127।।

पवननन्दन ! कपिश्रेष्ठ ! इसीलिए मैं आपका आदर करता हूँ आप मेरे माननीय हैं। आपके साथ मेरा यह सम्बन्ध महान् गुणों से युक्त है।।127।।

अस्मिन्नेवंगते कार्ये सागररूश ममैव च।

प्रीतिं प्रीतमनाः कर्तुं त्वमर्हसि महामते।।128।।

महामते ! इस प्रकार चिरकाल के बाद जो यह प्रत्युपकाररूप कार्य (आपके पिता के उपकार का बदला चुकाने का अवसर। प्राप्त हुआ है, इसमें आप प्रसन्नचित होकर मेरी और समुद्र की भी प्रीतिका सम्पादन करें (हमारा आतिथ्य ग्रहण करके हमें संतुष्ट करें।।128।।

श्रमं मोक्षय पूजां च गृहाण हरिसत्तम।

प्रीतिं च मम मान्यस्य प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात्।।129।।

वानरशिरोमणे ! आप यहां अपनी थकान उतारिये, हमारी पूजा ग्रहण कीजिए और मेरे प्रेम को भी स्वीकार कीजिए मैं आप जैसे माननीय पुरूष के दर्शन से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ।।129।।

एवमुक्त कपिश्रेष्ठस्तं नगोत्तमत्रवति।

प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोऽपनीयताम्।।130।।

मैनाक के ऐसा कहने पर कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने उस उत्तम पर्वत से कहा–मैनाक ! मुझे भी आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। मेरा आतिथ्य हो गया। अब आप अपने मन से यह दुःख अथवा चिन्ता निकाल दीजिये कि इन्होंने मेरी पूजा ग्रहण नहीं की।।130।।

त्वरते कार्यकालो में अहश्चाप्यतिवर्तते।

प्रतिज्ञा च ममा दत्ता न स्यातव्यमिद्यन्तरा।।131।।

मेरे कार्य का समय मुझे बहुत जल्दी करने के लिए प्रेरित कर रहा है। यह दिन भी बीता जा रहा है। मैंने वानरों के समीप यह प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं यहां बीच में कहीं नहीं ठहर सकता।।131।।

इत्युक्तवा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुङ्गवः।

जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान् प्रहसन्निव ।।132।।

ऐसा कहकर वानर शिरोमणी हनुमान ने हंसते हुए से वहां मैनाक का अपने हाथ से स्पर्श किया और आकाश में ऊपर उठकर चलने लगे।।132।।

NOTES

स पर्वतसमुद्राभ्यां बहुमानादवेक्षितः।

पूजितश्चोपपन्नाभिराशीर्भिरभिनन्दितः।।133।।

उस समय पर्वत और समुद्र ने ही बड़े आदर से उनकी ओर देखा, उनका सत्कार किया और यथोचित आशीर्वादों से उनका अभिनन्दन किया।।133।।

अथोर्ध्वे दूरमागित्य हित्वा शैलमहार्णवौ।

पितुः पन्थानमासाद्य जगाम विमलेऽम्बरे।।134।।

फिर पर्वत और समुद्र को छोड़कर उनसे दूर ऊपर उठकर अपने पिता के मार्ग का आश्रय ले हनुमान जी निर्मल आकाश में चलने लगे।।134।।

भूमश्चोर्ध्वे गतिं प्राप्य गिरिं तमवलोकयन्।

वायुसूनुर्निरालम्बो जगाम कपिकुञ्जरः।।135।।

तत्पश्चात और भी ऊँचे उठकर उस पर्वत को देखते हुए कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान जी बिना किसी आधार के आगे बढ़ने लगे।।135।।

तद् द्वितीयं हनुमतो दृष्ट्रा कर्म सुदुष्करम्।

प्रशशंसुः सुरा सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः।।136।।

हनुमान जी का यह दूसरा अत्यन्त दुष्कर कर्म देखकर सम्पूर्ण देवता, सिद्ध और महर्षिगण उनकी प्रशंसा करने लगे।।136।।

देवताश्चाभवन् दृष्टास्तत्रस्थास्तस्य कर्मणा।

काञ्चनस्य सुनाभस्य सहस्त्राक्षस्च वासनः।।137।।

वहाँ आकाश में ठहरे देवता तथा सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र उस सुन्दर मध्य भाग वाले सुवर्णमय मैनाक पर्वत के उस कार्य से बहुत प्रसन्न हुए।।137।।

उवाच वचनं धीमान् सगद्गदम्।

सुनाभं पर्वतश्रेष्ठं स्वयमेव शचीपतिः।।138।।

उस समय स्वयं बुद्धिमान शचीपति इन्द्र ने अत्यन्त संतुष्ट होकर पर्वतश्रेष्ठ सुनाभ मैनाक से गदगद वाणी में कहा।।138।।

NOTES

हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम्।

अभयं ते प्रयच्छामि गच्छ सोम्य यथा सुखम्।।139।।

सुवर्णमय शैलराज मैनाक ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। सौम्य। तुम्हें अभयदान देता हूँ। तुम सुखपूर्वक जहां चाहो, जाओ।।139।।

साह्मं कृतं ते सुमहद् विश्रान्तस्य हनूमतः।

क्रमतो योजनशतं निर्भयस्य भये सति।।140।।

सौ योजन समुद्र को लांघते समय जिनके मन में कोई भय नहीं रहा है, फिर भी जिनके लिये हमारे हृदय में यह भय था कि पता नहीं इनका क्या होगा ? उन्हीं हनुमान जी को विश्राम का अवसर देकर तुमने उनकी बहुत बड़ी सहायता की है।

रामस्यैष हितामैव याति दशरथेः कपिः

सत्क्रिमां कुर्वता शत्तयातोषितोऽस्मि दृढं त्वया।।141।।

ये वानर श्रेष्ठ हनुमान दशरथ नन्दन श्रीराम की सहायता के लिये ही जा रहे हैं। तुमने यथाशक्ति इनका सत्कार करके मझे पूर्ण संतोष प्रदान किया है।।141।।

स तंत् प्रहर्षमलभद् विपुलं पर्वतोत्तमः।

देवतानां पतिं दृष्ट्वा परितुष्टं शतक्रतुम्।।142।।

देवताओं के स्वामी शतक्रतु इन्द्र को संतुष्ट देखकर पर्वतों में श्रेष्ठ मैनाक को बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ।।142।।

स वै दत्तवरः शैलो बभूवावस्थितस्तदा।

हनूमांश्च मुहूर्तेन व्यतिचक्राम सागरम्।।143।।

इस प्रकार इन्द्र का दिया हुआ वर पाकर मैनाक उस समय जल में स्थित हो गया और हनुमान जी समुद्र के उस प्रदेश को उसी मुहूर्त में लांघ गये।।143।।

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।

अब्रुवन् सूर्यसंकाशां सुरसां नागमातरम्।।144।।

तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियों ने सूर्य तुल्य तेजस्विनी नागमाता सुरसा से कहा।।144।।

अयं वातात्मजः श्रीमान् पल्वते सागरोपरि।

हनूमान नाम तस्य त्वं मुहूर्ते विघ्नमाचर।।145।।

ये पवननन्दन श्रीमान् हनुमान जी समुद्र के ऊपर होकर जा रहे हैं। तुम दो घड़ी के लिये इनके मार्ग में विघ्न डाल दो।।145।।

NOTES

राक्षसं रूपमास्थाय सुघोरं पर्वतोपयम्।

दंष्ट्राकरालं पिङ्गाक्षं वक्त्रं कृत्वा नभः स्पृशम्।।146।।

तुम पर्वत के समान अत्यन्त भयंकर राक्षसी का रूप धारण करो। उसमें विकराल दाढ़ें, पीले नेत्र और आकाश को स्वर्श करने विकट मुंह बनाओ।।146।।

बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रयम्।

त्वां विजमेष्यत्युपायेन विषादं व गमिष्यति।।147।।

हम लोग पुनः हनुमान जी के बल और पराक्रम की परीक्षा लेना चाहते हैं या तो किसी उपाय से मैं तुम्हें जीत लेंगे अथवा विषाद में पड़ जायेंगे। इससे इनके बलाबल का ज्ञान हो जायेगा।।147।।

एवमुक्ता तु सा देवी दैवतैरभिसत्कृता।

समुद्र मध्य सुरसा बिभ्रती राक्षसं वपुः।।148।।

विकृतं च विरुपंच सर्वस्यच भयावहम्।

पल्लवमानं हनूमन्तमावृत्भेदमुवाच ह।।149।।

देवताओं के कहने पर देवी सुरसा ने समुद्र के बीच में राक्षसी का रूप धारण किया। उसका वह रूप बड़ा ही विकट, बेडौल और सबके लिये भयावना था। वह समुद्र के पार जाते हुए हनुमान् जी को घेरकर उनसे इस प्रकार बोली।।148–149।।

मम भक्ष्यः प्रदिष्टस्त्वमीश्वरैर्वानरर्षभ।

अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं समाननम्।।150।।

कपि श्रेष्ठ ! देवेश्वरों ने तुम्हें मेरा भक्ष्य बताकर मुझे अर्पित कर दिया है, अतः मैं तुम्हें खाऊंगी। तुम मेरे इस मुंह में चले आओ।।150।।

वर एष पुरा दत्तो मम घातेति सत्वरा।

व्यादाय वक्त्रं विपुलं स्थिता मारुतेः पुरः।।151।।

पूर्वकाल में ब्रम्हा जी ने मुझे यह वर दिया था। ऐसा कहकर वह तुरंत ही अपना विशाल मुंह फैलाकर हनुमान जी के सामने खड़ी हो गयी।।151।।

NOTES

एवमुक्तः सुरसया प्रहृष्टवदनोऽब्रवीत्।

रामो दाशरथिर्नाम प्रविष्टो दण्डकावनम्।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्याचापि भार्यया।।152।।

सुरसा के ऐसा कहने पर हनुमान जी ने प्रसन्नमुख होकर कहा देवि ! दशरथनन्दन श्री रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताजी के साथ दण्डकारण्य में आये थे।।152।।

अन्यकार्यविषक्तस्य बद्धवैरस्य राक्षसैः।

तस्य सीता हृता भार्यारावणेन यशस्विनी।।153।।

वहाँ परहित–साधन में लगे हुए श्रीराम का राक्षसों के साथ बैर बंध गया। अतः रावण ने उनकी यशस्विनी भार्या सीता को हर लिया।।153।।

तस्याः सकाशं दूतोऽहं गमिष्ये रामशासनात्।

कर्तमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनि।।154।।

मैं श्री राम की आज्ञा से उनका दूत बनकर सीता जी के पास जा रहा हूँ। तुम भी श्री राम क राज्य में निवास करती हो। अतः तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिये।।154।।

अथवा मैथिलीं दृष्ट्वा समं चाक्रिष्टकारिणम्।

आगमिष्यामि ते वक्त्रं सत्यं प्रतिश्रृणोमि ते।।155।।

अथवा (यदि तुम मुझे खानाही चाहती हो तो) मैं सीता जी का दर्शन करके अनायास ही महान् कर्म करने वाले श्री रामचन्द्र जी से जब मिल लूँगा, तब तुम्हारे मुख में आ जाऊँगा, यह तुम से सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।।155।।

एवमुक्ता हनुमता सुरसा कामरूपिणी।

अब्रवीनातिवर्तेन्मां कश्चिदेष वरो मम।।156।।

हनुमान जी के ऐसा कहने पर इच्छानुसार रूप धारण करने वाली सुरसा बोली– ''मुझे यह वर मिला है कि कोई भी मुझे लांघकर आगे नहीं जा सकता।।156।।

तं प्रयान्तं समुद्वीक्ष्य सुरसा वाक्यमब्रतीत्।

बलं जिज्ञासमाना सा नागमाता हनूमतः।।157।।

फिर भी हनुमान जी को जाते देख उनके बल को जानने की इच्छा रखने वाली सुरसा ने उनसे कहा

निविश्यं वदनं मेऽघ गन्तव्यं वानरोत्तम।

वर एष पुरा दत्तो मम धात्रेति सत्वरा।।158।।

त्यादाम विपुलं वक्त्रं स्थिता सा मारुतेः पुरः।

वानरश्रेष्ठ ! आज मेरे मुख में प्रवेश करके ही तुम्हें आगे जाना चाहिये, पूर्वकाल में विधाता ने मुझे ऐसा ही वर दिया था।' ऐसा कहकर सुरसा तुरंत अपना विशाल मुंह फैलाकर हनुमान जी के सामने खड़ी हो गयी।।158।।

एवमुक्तः सुरसया कुद्धो वानरपुंगवः।।159।।

अब्रवीत् कुरू वै वक्त्र येन मां विषहिष्यसि।

इत्युक्त्वा सुरसां क्रुद्धो दशयोजनमायताम्।।160।।

दशयोजन विस्तारो हनूमान्भवत् तदा।

तं दृष्ट्वा मेघसंकाशं दशयोजनामायतम्।

चकार सुरसाप्यास्यं विंशद्योजनमायतम्।।161।।

सुरसा के ऐसा कहने पर वानर शिरोमणि हनुमान जी कुपित हो उठे और बोले तुम अपना मुँह इतना बड़ा बना लो जिससे उसमें मेरा भार सह सको। यों कहकर जब वे मौन हुए, तब सुरसा ने अपना मुख दस योजन विस्तृत बना लिया। यह देखकर कुपित हुए हनुमान जी भी तत्काल दस योजन बड़े हो गये। उन्हें मेघ के समान दस योजन विस्तृत शरीर से युक्त हुआ देख सुरसा ने भी अपने मुख को बीस योजन बड़ा बना लिया।।159–161।।

हनूमांस्तु ततः क्रुद्धस्विशद्योजनमायतः।

चकार सुरसा वक्त्रं चत्वारिंशत् तथोच्छ्रितम्।।162।।

तब हनुमान जी ने क्रुद्ध होकर अपने शरीर को तीस योजन अधिक बढ़ा दिया। फिर तो सुरसा ने भी अपने मुंह को चालीस योजन ऊँचा कर लिया।।162।।

बभूव हनुमान वीरः पश्चाशद् योजनोच्छ्रितः।

चकार सुरसा वक्त्रंषष्टिं योजनमुच्छ्रितम्।।163।।

NOTES

यह देखकर वीर हनुमान पचास योजन ऊँचे हो गये। तब सुरसा ने अपना मुंह साठ योजन ऊँचा बना लिया।।163।।

NOTES

तदैव हनुमान वीरः सप्ततिं योजनोच्छ्रितः।

चकार सुरसा वक्त्रमशीतिं योजनोच्छ्रितम्।।164।।

फिर तो बीर हनुमान उसी क्षण सत्तर योजन ऊँचे हो गये। यह देख सुरसा ने अस्सी योजना ऊँचा मुंह बना लिया।।164।।

हनुमाननलप्रख्यो नवतिं योजनोच्छ्रितः।

चकार सुरसा वक्वं शतयोजनमायतम्।।165।।

तदन्तर अग्नि के समान तेजस्वी हनुमान नब्बे योजन ऊँचे हो गये, यह देख सुरसा ने भी अपने मुंह का विस्तार सौ योजन कर लिया।।165।।

तद् दृष्ट्वा व्यादितं त्वाख्यं वायुपुत्रः स बुद्धिमान्।

दीर्घजिह्वं सुरसश सुभीमं नरकोपमम्।।166।।

स संक्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः।

तस्मिन् मुहूर्ते अनुमान बभूवाङ्गष्ठमात्रकः।।167।।

सुरसा के उस फैलाये हुए विशाल जिह्वा से युक्त और नरक के समान अत्यन्त भयंकर मुंह को देखकर बुद्धिमान वायु पुत्र हनुमान ने मेघ की भांति अपने शरीर को संकुचित कर लिया। वे उसी क्षण अंगूठे के बराबर छोटे हो गए।।166–167।।

सोऽभिपद्याथ तद्वस्त्रं निष्पस्थ च महाबलः।

अन्तरिक्षे स्थितः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्।।168।।

फिर वे महाबली श्रीमान् पवनकुमार सुरसा के उस मुंह में प्रवेश करके तुरंत निकल आये और आकाश में खड़े होकर इस प्रकार बोले।।168।।

प्रविष्टोऽस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायवि नमोऽस्तुते।

गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्चासीद् वरस्तव।।169।।

दक्षकुमारी ! तुम्हें नमस्कार है। मैं तुम्हारे मुंह में प्रवेश कर चुका लो, तुम्हारा वर भी सत्य हो गया। अब मैं उसे स्थान को जाऊँगा, जहां विदेहकुमारी सीता विद्यमान हैं।।169।।

तं दृष्ट्वा वदनान्युक्तं चन्द्रं राहुमुखादिव।

अब्रवीत् सुरसा देवी स्वेन रूपेण वानरम्।।170।।

राहु के मुँह से छूटे हुए चन्द्रमा की भांति अपने मुख से मुक्त हुए हनुमान जी को देखकर सुरसा देवी ने अपने असली रूप में प्रकट होकर उन वानर वीर से कहा।।170।।

NOTES

अर्थसिद्धयै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम्।

समानय च वैदेही राघवेण महात्मना।।171।।

कपिश्रेष्ठ ! तुम भगवान श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिये सुखपूर्वक जाओ। सौम्य ! विदेहनन्दिनी सीता को महात्मा श्रीराम से शीघ्र मिलाओ'।।171।।

तत् तृतीय हनुमतो दृष्ट्वा कर्म सुदुष्करम्।

साधुसाध्विति भूतानि प्रशशंसुस्तदा हरिम्।।172।।

कपिवर हनुमान् जी का यह तीसरा अत्यन्त दुष्कर कर्म देख सब प्राणी वाह–वाह करके उनकी प्रशंसा करने लगे।

स सागरमनाधृष्यमभ्येत्य वरुणालयम्।

जगामाकाशमाविश्य वेगेन गरुडोपमः।।173।।

वे वरूण के निवासभूत अलङध्य समुद्र के निकट आकर आकाश का ही आश्रय ले गरुड़ के समान वेग से आगे बढ़ने लगे।।173।।

सेविते वारिधाराभिः पतगैश्च निषेविते।

चरिते कैशिकाचार्यैरैरावतनिषेविते।।174।।

सिंहकुञ्जर शार्दूलपतगोरगवाहनैः।

विमानैः सम्पतद्भिश्च विमलैः समलंकृते।।175।।

वज्रासनिशमस्यपशैः पावकैरिव शोभिते।

कृतपुण्यैर्महाभागैः स्वर्गजिद्भिरधिष्ठिते।।176।।

वहता हव्यमत्यन्तं सेविते चित्रभानुना।

ग्रहनक्षत्र चन्द्रार्कवारागण विभूषिते।।177।।

महर्षिगण गन्धर्व नागयक्षसमाकुलें।

विविक्ते विमले विश्वे विच्चावसुनिषेविते।।178।।

देवराजगजाक्रान्ते चन्द्रसूर्यपथे शिवे।

वितानेजीवलोकस्य वितते ब्रह्मनिर्मिते।।179।।

बहुशः सेविते वीरैर्विद्याधरगणैर्वृते।

जगाम वायुमार्गे च गुरुत्मानिव मारुतिः।।180।।

NOTES

जो जल कि धाराओं से सेवित, पक्षियों से संयुक्त, गान–विद्या के आचार्य तुम्बुरु आदि गन्धर्वों के विचरण का स्थान तथा ऐरावत के आने–जाने का मार्ग है, सिंह, हाथी, बाघ, पक्षी और सर्प आदि वाहनों से जूते और उड़ते हुए निर्मल विमान जिसकी शोभा बढ़ाते हैं, जिनका स्पर्श वज्र और अशनि के समान दुःसह तथा तेज अग्नि के समान प्रकाशमान है तथा जो स्वर्गलोक पर विजय पा चुके हैं, ऐसे महाभाग पुण्यात्मका पुरुषों का जो निवास स्थान है देवता के लिए अधिक मात्रा में हविष्य का भार वहन करने वाले अग्निदेव जिसका सेवन करते हैं, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और तारे आभूषण की भांति जिसे सजाते हैं, महर्षियों के समुदाय गन्धर्व और नाग यक्ष जहां भरे रहते हैं, जो जगत का आश्रय स्थान, एकान्त और निर्मल है, गन्धर्वराज विश्वासु जिसमें निवास करते हैं, देवराज इन्द्र का हाथी जहां चलता फिरता है, जो चन्द्रमा और सूर्य का भी मङ्गलमय मार्ग है, इस जीव–जगत के लिये विमल वितान (चंदोवा) है, साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ने ही जिसकी सृष्टि की है, जो बहुसंख्यक वीरों से सेवित और विधाधरगणों से आवृत्त है, उस वायुपथ आकाश में पवननन्दन हनुमान जी गरुड़ के समान वेग से चले।।174–180।।

हनुमान् मेघजालानि प्राकर्षन् मारुतो यथा।

कालागुरुसवर्णानि रक्तपीतसितानिच।।181।।

वायु के समान हनुमान जी अगर के समान काले तथा लाल, पीले और श्वेत बादलों को खींचते हुए आगे बढ़ने लगे।।181।।

कपिना कृष्यमाणानि महाभ्राणि चकाशिरे।

प्रविशन्नभ्रजालानि निष्पतंश्च पुनः पुनः।।182।।

प्रावृषीन्दुरिवाभाति निष्पदन प्रविशंस्तदा।

उनके द्वारा खींचे जाते हुए वे बड़े–बड़े बादल अद्भुत शोभा पा रहे थे। वे बारंबार मेघ समूहों में प्रवेश करते और बाहर निकलते थे उस अवस्था में बादलों में छिपते तथा प्रकट होते वर्षाकाल के बादलों की भांति उनकी बड़ी शोभा हो रही थी।।182।।

प्रदृश्यमानः सर्वत्र हनूमान मारुतात्मजः।।183।।

भेजेऽम्बरं निरालम्बं पक्षयुक्त इविद्रिराट्।

सर्वत्र दिखाई देते हुए पवनकुमार हनुमान जी पंखधारी गिरिराज के समान निराधार आकाश का आश्रय लेकर आगे बढ़ रहे थे।।183।।

2.1.3 पल्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसि।।184।।

NOTES

मनसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी।

इस तरह जाते हुए हनुमान जी को इच्छानुसार रूप धारण करने वाली विशालकाया सिंहिका नामवाली राक्षसी ने देखा, देखकर वह मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगी।।184।।

अद्य दीघ्रस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता।।185।।

इदं मम महासत्वं चिरस्य वस्मागतम्।

आज दीघ्रकाल के बाद यह विशाल जीव मेरे वंश में आया है, इसे खा लेने पर बहुत दिनों के लिये मेरा पेट भर जायगा।।185।।

इति संचित्य मनसाच्छायामस्य माशिता।।186।।

छायायां गृह्यमाणायां चिन्तयामास वानरः।

समाक्षिप्तोऽस्मि सहसा पङ्गकृतपराक्रमः।।187।।

प्रतिलोमेन वातेन महानौखि सागरे।

अपने ह्रदय में ऐसा सोचकर उस राक्षसी ने हनुमान् जी की छाया पकड़ ली। छाया पकड़ी जाने पर वानरवीर हनुमान ने सोचा अहो ! सहसा किसने मुझे पकड़ लिया, इस पकड़ के सामने मेरा पराक्रम पङगु हो गया है। जैसे प्रतिकूल हवा चलने पर समुद्र में जहाज की गति अवरुद्ध हो जाती है वैसी ही दशा आज मेरी भी हो गयी है।।186'187।।

तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणस्तदा कपिः।।।188।।

ददर्श स महासत्वमुत्थितं लवणाम्भसि।

यही सोचते हुए कपिवर हनुमान ने उस समय अगल–बगल में, ऊपर और नीचे दृष्टि डाली। इतने ही में उन्हें समुद्र के जल के ऊपर उठा हुआ एक विशालकाय प्राणी दिखाई दिया।।188।।

तद् दृष्ट्वा चिन्तयामास मारुतिर्विकृताननाम्।।189।।

कपिराज्ञा यथाख्यातं सत्वमद्भुतदर्शनम्।

छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः।।190।।

उस विकराल मुखवाली राक्षसी को देखकर पवनकुमार हनुमान सोचने लगे–वानरराज सुग्रीव ने जिस महापराक्रमी छायाग्राही अद्‌भुत जीव की चर्चा की थी, वह निःसंदेह यही है।।189–190।।

NOTES

सतां बुद्‌धार्थतर्त्वेन सिंहिका मतिमान्‌कपिः।

व्यवर्धत महाकायः प्रावृजीव बलाहकः।।191।।

तब बुद्धिमान कपिवर हनुमान जी ने यह निश्चय करके कि वास्तव में यही सिंहिका है, वर्षाकाल के मेघ की भांति अपने शरीर को बढ़ाना आरम्भ किया। इस प्रकार वे विशालकाय हो गये।।191।।

तस्य सा कायमुद्रीक्ष्य वधमानं महाकपेः।

वक्वं प्रसारयामास पातालाम्बर संनिभम्।।192।।

धनराजीव गर्जन्ती वानरं समभिद्रवत्।

उन महाकपि के शरीर को बढ़ते देख सिंहिका ने अपना मुंह पाताल और आकाश के मध्यभाग के समान फैला लिया और मेघों के घटा के समान गर्जना करती हुई उन वानरवीर की ओर दौड़ी।।192।।

स ददर्श ततस्तस्या विकृतं सुमहन्मुखम्।।193।।

काममातं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः।

हनुमान जी ने उसका अत्यन्त विकराल और बढ़ा हुआ मुंह देखा। उन्हें अपने शरीर के बराबर ही उसका मुंह दिखाई दिया। उस समय बुद्धिमान महाकपि हनुमान ने सिंहिका के मर्मस्थानों को अपना लक्ष्य बनाया।।193।।

स तस्या विकृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपिः।।194।।

संक्षिप्य महुरात्मानं निपपात महाकपिः।

तदनन्तर वज्रोपम शरीर वाले महाकपि पवन कुमार अपने शरीर को संकुचित करके उसके विकराल मुख में आ गिरे।।194।।

आस्ये तस्या निमज्जनतं ददृशुः सिद्धचारणाः।।195।।

ग्रस्मानं यथा चन्द्रं पूर्णे पर्वणि राहुणा।

उस समय सिद्धों और चारणो ने हनुमान जी को सिंहिका के मुख में उसी प्रकार निमग्न होते देखा, जैसे पूर्णिमा की रात में पूर्ण चन्द्रमा राहु के ग्रास बन गये हों।।195।।

ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः।।196।।

उत्पपानाथ वेगेन मनःसम्पातविक्रमः।

मुख में प्रवेश करके उड़ वानरवीर ने अपने तीखे नखों से उस राक्षसी के मर्मस्थलों को विदीर्ण कर डाला। इसके पश्चात वे मनके समान गति से उछलकर वेगपूर्वक बाहर निकल आये।।196।।

NOTES

तां तु दिष्टया च धृत्या च दक्षिण्मेन निपात्य सः।।197।।

कपि प्रवीरो वेगेन ववृधे पुनरात्यवान्।

दैव के अनुग्रह, स्वाभाविक धैर्य तथा कौशल से उस राक्षसी को मारकर वे मनस्वी वानरवीर पुनः वेग से बढ़कर बड़े हो गये।।197।।

छाछत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि।

स्वयंभुवैव हनुमान सृष्टस्तस्या निपातने।।198।।

हनुमान जी ने प्राणों के आश्रयभूत उसके हृदयस्थल को ही नष्ट कर दिया, अतः वह प्राणशून्य होकर समुद्र के जल में गिर पड़ी। विधाता ने ही उसे मार गिराने के लिए हनुमान जी को निमित्त बनाया था।।198।।

तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम्।

भूतान्याकाशचाराणि तमूचु पल्लवगोत्वमम्।।199।।

उन वानर वीर के द्वारा शीघ्र ही मारी जाकर सिंहिका जल में गिर पड़ी। यह देख आकाश में विचरने वाले प्राणी उन कपिश्रेष्ठ से बोले।।199।।

भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्वं लया हतम्।

साधमार्थमभिप्रेतमरिष्टं पल्वतां वर।।200।।

कपिवर ! तुमने यह बड़ा ही भयंकर कर्म किया है, जो इस विशालकाय प्राणी को मार गिराया है। अब तुम बिना किसी विघ्न–बाधा के अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध करो।।201।।

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।

धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति।।201।।

वानरेन्द्र ! जिस पुरुष में तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता– ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्य में कभी असफलता नहीं होती।।201।।

स तैः सम्पूजितः पूज्यः प्रतिपन्नप्रयोजनैः।

जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत् कपिः।।202।।

NOTES

इस प्रकार अपना प्रयोजन सिद्ध हो जाने से उन आकाश चारी प्राणियों ने हनुमान जी का बड़ा सत्कार किया। इसके बाद वे आकाश में चढ़कर गरुड़ के समान वेग से चलने लगे।।204।।

प्राप्तभूपिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन्।

योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः।।203।।

सौ योजन के अन्त में प्रायः समुद्र के पास पहुंचकर जब उन्होंने सब ओर दृष्टि डाली, तब उन्हें एक हरी–भरी वन–श्रेणी दिखाई दी।।203।।

ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुम भूषितम्।

द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च।।204।।

आकाश में उड़ते हुए ही शाखा मृगों में श्रेष्ठ हनुमान जी ने भांति–भांति के वृक्षों से सुशोभित लङ्का नामक द्वीप देखा। उत्तर तट की भांति समुद्र के दक्षिण तट पर भी मलय नामक पर्वत और उसके उपवन, दिखाई दिये।।204।।

सागरं सागरानूपान् सागरानूपलान् दुमान्।

सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयत्।।205।।

समुद्र सागरतटवर्ती जल प्राय देश तथा वहां उगे हुए वृक्ष एवं सारपत्नी सरिताओं के मुहानों को भी उन्होंने देखा।।205।।

स महामेधसंकाश समीक्ष्यात्मानमात्मवान्।

निरुन्धन्तमिवाकाशंचकार मतिमान् मतिम्।।206।।

मन को वश में रखने वाले बुद्धिमान हनुमान जी ने अपने शरीर को महान मेघों की घटा के समान तथा आकाश को अवरूद्ध करता सा देख मन–ही–मन इस प्रकार विचार किया।।206।।

कामवृद्धिं प्रवेगं च मम दृष्ट्वैव राक्षसााः।

मयि कौतूहल कुर्युरिति मेने महामतिः।।207।।

अहो ! मेरे शरीर की विशालता तथा मेरा यह तीव्र वेग देखते ही राक्षसों के मन में मेरे प्रति बड़ा कौतूहल होगा– वे मेरा भेद जानने के लिये उत्सुक हो जायेंगे। परम बुद्धिमान हनुमान जी के मन में यह धारणा पक्की हो गयी।।207।।

NOTES

ततः श्रीरं संक्षिप्य तन्महीधरसंनिभम्।

पुनः प्रकृतिमापेदे वीतमोह इवात्मवान्।।208।।

मनस्वी हनुमान अपने पर्वताकार शरीर को संकुचित करके पुनः अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो गये। ठीक उसी, तरह जैसे मन को वश में रखने वाला मोहरहित पुरूष अपने मूल स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है।।208।।

तदूपमतिसंक्षिप्य हनूमान प्रकृतौ स्थितः।

त्रीन् क्रमानिव विक्रम्य बलिवीर्य हरो हरिः।।209।।

जैसे बलि के पराक्रम सम्बन्धी अभिमान को हर लेने वाले श्री हरि ने विराट रूप से तीन पग चलकर तीनों लोकों को नाप जेने के पश्चात् अपने उस स्वरूप को समेट लिया था, उसी प्रकार हनुमान जी समुद्र को लांघ जाने के बाद अपने उस विशाल रूप को संकुचित करके अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो गये।।209।।

स चारूनानाविधरूपधारी

परं समासाद्य समुद्रतीरम्।

परैरशक्य प्रतिपन्नरूपः

समीक्षितात्या समवेक्षितार्थः।।210।।

हनुमान् जी बड़े ही सुन्दर और नाना प्रकार के रूप धारण कर लेते थे। उन्होंने समुद्र के दूसरे तट पर, जहां दूसरों का पहुंचना असम्भव था, पहुंचकर अपने विशाल शरीर की ओर दृष्टिपात किया। फिर अपने कर्तव्य का विचार करके छोटा सा रूप धारण कर लिया।।210।।

ततः स लम्बस्य गिरेः समृद्धे

विचित्रकूटे निपपात कूटे।

सकेतकोद्दालकनारिकेले

महाभ्रकूटप्रतिमो महात्मा।।211।।

महान मेघ–समूह को समान शरीर वाले महात्मा हनुमान जी केवड़े, लसोड़े और नारियल के वृक्षों से विभूषित लम्ब पर्वत के विचित्र लघु शिखरों वाले महान समृद्धिशाली श्रृङ्ग पर कूद पड़े।।211।।

NOTES

ततस्तु सम्प्राप्य समुद्रतीरं

समीक्ष्य लङ्का गिरिवर्यमूर्धिन।

कपिस्तु तस्मिन् निपपात पर्वते

विधूय रूपं व्यथ्मन्मृगद्विजान्।।212।।

तदनन्तर समुद्र के तट पर पहुंचकर वहां से उन्होंने एक श्रेष्ठ पर्वत के शिखर पर बसी हुई लंका को देखा। देखकर अपने पहले रूप को तिरोहित करके वे वानरवीर वहां के पशु–पक्षियों की व्यथित करते हुए उसी पर्वत पर उतर पड़े।।212।।

स सागरं दानवपन्नगायुक्तं

बलेन विक्रम्य महोर्मिमालिनम्।

निपत्य तीरे च महोदधेस्तदा

ददर्श लङ्काममरावतीमिव।।213।।

इस प्रकार दानवों और सर्पों से भरे हुए तथा बड़ी–बड़ी उत्वाल तरंगमालाओं से अलंकृत महासागर को बलपूर्वक लांघकर वे उसके तट पर उतर गये और अमरावती के समान सुशोभित लंकापुरी की शोभा देखने लगे।।213।।

2.1.4

NOTES

द्वितीयः सर्गः

लंका पुरी का वर्णन, उसमें प्रवेश करने के विषय में हनुमान जी का विचार, उनका लघुरूप से पुरी में प्रवेश तथा चन्द्रोदय का वर्णन

स सागर मना पृष्यमतिक्रम्य महाबलः।

त्रिकूटस्य तटे लङ्का स्थितः स्वस्थो ददर्शह।।1।।

महाबली हनुमान जी अलंघनीय समुद्र को पार करके त्रिकूट (लम्ब) नामक पर्वत के शिखर पर स्वस्थ भाव से खड़े हो लंकापुरी की शोभा देखने लगे।।1।।

ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान्।

अभिवृष्टस्ततस्तत्र बभौ पुष्पममो हरिः।।2।।

उस समय उनके ऊपर वहां वृक्षों से झड़े हुए फूलों की वर्षा होने लगी। इससे वहां बैठे हुए पराक्रमी हनुमान फूल के बने हुए वानर के समान प्रतीत होने लगे।।2।।

योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्मविक्रमः।

अनिःश्वसन् कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति।।3।।

उत्तम पराक्रमी श्रीमान् वानरवीर हनुमान सौ योजन समुद्र लांघकर भी वहां लंबी सांस नहीं खींच रहे थे और न ग्लानि का ही अनुभव करते थे।।3।।

शतान्यहं योजनानां क्रमेयं सुबहून्यपि।

किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यात शतयोजनम्।।4।।

उलटे वे यह सोचते थे, मैं सौ–सौ योजनों के बहुत से समुद्र लांघ सकता हूं, फिर इस गिने गिनाये सौ योजन समुद्र को पार करना कौन बड़ी बात है।।4।।

स तु वीर्यवतांश्रेष्ठः प्रवतामपि चोत्तमः।

जगाम वेगवाँलङ्का लङ्घयित्वा महोदधिम्।।5।।

बलवानों में श्रेष्ठ तथा वानरों में उत्तम वे वेगवान पवनकुमार महासागर को लांघकर शीघ्र ही लंका में जा पहुंचे।।5।।

शाद्रलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानिच।

मधुमत्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च।।6।।

रास्ते में हरी–हरी दूब और वृक्षों से भरे हुए मकरन्द पूर्ण सुगन्धित वन देखते हुए वे मध्यमार्ग से जा रहे थे।।6।।

NOTES

शैलांश्च तरुसंछन्नान् वनराजीश्व पुष्पिताः।

अभिचक्राम तेजस्वी हनूमान प्लवगर्षभः।।7।।

तेजस्वी वानर शिरोमणि हनुमान, वृक्षों से आच्छादित पर्वतों और फूलों से भरी हुई वन श्रेणियों में विचरने लगे।।7।।

स तस्मिन्नवले तिष्ठन् वनान्युपवनानि च।

स नगाग्रे स्थितांलङ्का ददर्श पवनात्मजः।।8।।

उस पर्वत पर स्थित हो पवनपुत्र हनुमान ने बहुत से वन और उपवन देखे तथा उस पर्वत के अग्रभाग में बसी हुई लंका का भी अवलोकन हकिया।।8।।

सरलान् कर्णिकारांच्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान्।

प्रियालान् मुचुलिन्दांश्च कुटजान् केतकानपि।।9।।

प्रियङ्गून् गन्धपूर्णोश्च नीपान् सप्तच्छदांस्तथा।

असनान् कोविदारश्च करवीरांश्च पुष्पितान्।।10।।

पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलिवानपि।

पादपान् विहगाकीर्णान् पवनाधूतमस्तकान्।।11।।

उन कपिश्रेष्ठ ने वहाँ सरल (चीढ़), कनेर, (खिले हुए खजूर) प्रियाल, (चिरौंजी), मुचुलिन्द (जम्बीरी नीबू), कुटज, केतक (केवड़े) सुगन्धपूर्ण प्रियंगु (पिप्पली) नीप, छितवान्, असन, कोविदार तथा खिले हुए करवीर भी देखे। फूलों के भार से लदे हुए तथा मुकुलित (अधखिले) बहुत से वृक्ष उन्हें दृष्टिगोचर हुए जिनमें पक्षी भरे हुए थे और हवा झोंके से जिनकी डालियां झूम रहीं थी।।9–11।।

हंसकारण्डवाकीर्णा वापीः पद्मोत्पलावृताः।

आक्रीडान् विविधान् रम्यान् विविधांच्च जलाशयान्।।

हंसों और कारण्डवों से व्याप्त तथा कमल और उत्पल से आच्छादित हुई बहुत सी बॉवड़ियां, भांति–भांति के रमणीय क्रीड़ास्थान तथा नाना प्रकार के जलाशय उनके दृष्टिपथ में आये।।12।।

संतनान् विविर्धवृक्षैः सर्वर्तुफलपुषिपतैः।

उद्यानानि च रम्याणि ददर्वा कपिकुञ्जरः।।13।।

उन जलाशयों के चारों ओर सभी ऋतुओं में फल–फूल देने वाले अनेक प्रकार के वृक्ष फैले हुए थे। उन वानर शिरोमणि ने वहां बहुत से रमणीय उद्यान भी देखे।।13।।

NOTES

समासाद्य च लक्ष्मीवाँलङ्का रावणपालिताम्।

परिखाभिः सपद्माभिः साप्लाभिरलं कृताम्।।14।।

सीतापहरणात् तेन रावणेन सुरभिताम्।

समन्ताद् विचरद्भिश्च राक्षसैरुप्रधन्वभिः।।15।।

अद्भुत शोभा से सम्पन्न हनुमान जी धीरे–धीरे रावण पालित लंका पुरी के पास पहुंचे। उसके चारों ओर खुदी हुई खाइयां उस नगरी की शोभा बढ़ा रही थीं। उनमें उत्पल और पद्म आदि कई जातियों के कमल खिले थे। सीता को हर लाने के कारण रावण ने लंकापुरी की रक्षा का विशेष प्रबन्ध कर रखा था। उसके चारों ओर भयंकर धनुषधारण करने वाले राक्षस घूमते रहते थे।।14–15।।

2.1.5 काञ्जनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम्।

गृहैश्च गिरिसंकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः।।16।।

वह महापुरी सोने की चहार दीवारी से घिरी हुई थी तथा पर्वत के समान ऊंचे और शरद ऋतु के बादलों के समान श्वेत भवनों से भरी हुई थी।।16।।

पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम्।

अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम्।।17।।

श्वेत रंग की ऊंची–ऊंची सड़के उस पुरी को सब ओर से घेरे हुए थीं। सैकड़ों अ्टालिकाएं वहां शोभा पा रहीं थीं तथा फहराती हुई ध्वजा पताकाएं उस नगरी की शोभा बढ़ा रही थीं।।17।।

तोरणैः काञ्जनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्तिविराजितैः।

ददर्श हनुमाँल्लङ्का देवो देवपुरीमिव।।18।।

उसके बाहरी फाटक सोने के बने हुए थे और उनकी दीवारे लता–बेलों के चित्र से सुशोभित थीं। हनुमान जी ने उन फाटकों से सुशोभित लंका को उसी प्रकार देखा, जैसे कोई देवता देवपुरी का निरीक्षण कर रहा हो।।18।।

गिरिमूर्धि स्थितां लङ्का पाण्डुरैर्थवनैः शुभैः।

ददर्श स कपिः श्रीमान् पुरीमाकाशगामिव।।19।।

NOTES

तेजस्वी कपि हनुमान ने सुन्दर शुभ्र सदनों से सुशोभित और पर्वत के शिखर पर स्थित लंका को इस तरह देखा, मानो वह आकाश में विचरने वाली नगरी हो।।19।।

पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा।

पल्लवमानामिवाकाश ददर्श हनुमान् कपिः।।20।।

कपिवर हनुमान ने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित तथा राक्षसराज रावण द्वारा सुरक्षित उस पुरी को आकाश में तैरती सी देखा।।20।।

वप्रप्राकार जघनां विपुलाम्बुवनाम्बराम्।
शतघ्नीशूल केशान्तामट्टालकावतंसकाम्।।21।।
मनसेव कृतां लङ्का निमितां विश्वकर्मणा।

विश्वकर्मा की बनायी हुई लंका मानो उनके मानसिक संकल्प से रची गयी एक सुन्दरी स्त्री थी। चहार दीवारी और उसके भीतर की वेदी उसकी जघनस्थली जान पड़ती थी, समुद्र का विशाल जलराशि और वन उसकी वस्त्र थे, शतघ्नी और शुल नामक अस्त्र ही उसके केश थे और बड़ी–बड़ी अ्टालिकाएं उसके लिए कर्णभूषण सी प्रतीत हो रही थी।।21।।

द्वारमुत्रमासाद्य चिन्यामास वानरः।।22।।
कैलासनिलप्रख्यमालिखन्तमिवाम्बरम्।
ध्रियमाणमिवाकायसमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः।।23।।

उस पुरी के उत्तर द्वार पर पहुंचकर वानरवीर हनुमान जी चिन्ता में पड़ गये। वह द्वार कैलास पर बसी हुई अलकापुरी के बर्हिद्वार के समान ऊँचा था और आकाश में रेखा–सी खींचता जान पड़ता था। ऐसा जान पड़ता था मानों अपने ऊँचे–ऊँचे प्रसादों पर आकाश को उठरा रखा हो।।22–23।।

सम्पूर्णा राक्षसैर्धेरैर्नागैर्भोगवतीमिव।
अचिन्त्या सुकृतां स्पष्टां कुबेराघ्युषितां पुरा।।24।।
दंष्ट्राभिर्वहुभिः शूरैः शूलपट्टिशपाणिभिः।
रक्षितां राक्षसैर्घोरैर्गहाम्प्रशीविषैरिव।।25।।

लंकापुरी भयानक राक्षसों से उसी तरह भरी थी, जैसे पाताल की भोगवतीपुरी नागों से भरी रहती है। उसकी निर्माण कला अचिन्त्य थी। उसकी रचना सुन्दर ढंग से की गयी

थी। वह हनुमान जी को स्पष्ट दिखाई देती थी। पूर्वकाल में साक्षात् कुबेर वहां निवास करते थे। हाथों में शूल और पट्टिश लिये बड़ी–बड़ी दाढ़ों वाले बहुत से शूरवीर घोर राक्षस लंका पुरी को उसी प्रकार रक्षा करते थे जैसे विषधर सर्प अपनी पुरी की करते हैं।।24–25।।

NOTES

तस्याश्चमहतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः।।26।।

उस नगरी की बड़ी भारी चौकसी, उसके चारों ओर समुद्र की खाई तथा रावण जैसे भयंकर शत्रु को देखकर हनुमान जी विचार करने लगे।।26।।

आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः।
नहि युद्धेन वै लंङ्का शक्या जेतुं सुरैरपि।।27।।

यदि वानर यहां तक आ जायं तो भी वे व्यर्थ ही सिद्ध होंगे, क्योंकि युद्ध के द्वारा देवता भी लंका पर विजय नहीं पा सकते।।27।।

इमां त्वविषमां लङ्कां दुर्गां रावणपालिताम्।
प्रात्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः।।28।।

जिससे बढ़कर विषय स्थान और कोई नहीं है, उस रावणपालित इस दुर्ग में आकर महाबाहु श्री रघुनाथ जी भी क्या करेंगे।।28।।

अवकाशो न साम्नस्तु राक्षसेष्वभिगम्यते।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते।।29।।

राक्षसों पर सामनीति के प्रयोग के लिये कोई गुंजाइश ही नहीं है। इन पर दान, भेद और युद्ध नीति का प्रयोग भी सफल होता नहीं दिखाई देता।।29।।

चतुर्णामेव ही गतिर्वानराणां तरस्विनाम्।
वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः।।30।।

यहां चार ही वेगशाली वानरों की पहुंच हो सकती है, बालिपुर अंगद की, नील की, मेरी और बुद्धिमान् राजा सुग्रीव की।।30।।

यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा न वा।
तत्रैव चिन्तमिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम्।।31।।

अच्छा पहले यह तो पता लगाऊँ कि विदेहकुमारी सीता जीवित हैं या नहीं। जनककिशोरी का दर्शन करने के पश्चात ही मैं इस विषय में कोई विचार करूंगा।।31।।

ततः स चिन्तयामास मुहुर्ते कपिकुञ्जरः।
गिरेः श्रृङ्गे स्थितस्तस्मिन् रामस्याभ्युदयं ततः।।32।।

NOTES

तदनन्तर उस पर्वत शिखर पर खड़े हुए कपि श्रेष्ठ हनुमान जी श्रीरामचन्द्र जी के अभ्युदय के लिए सीता जी का पता लगाने के उपायपर दो घड़ी तक विचार करते रहे।।32।।

अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्वलसमन्वितैः।।33।।

उन्होंने सोचा मैं इस रूप से राक्षसों की इस नगरी में प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि बहुत से क्रूर और बलवान राक्षस इसकी रक्षा कर रहे हैं।।33।।

महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः।
वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता।।34।।

जानकी की खोज करते समय मुझे अपने को छिपाने के लिये यहां के सभी महातेजस्वी महापराक्रमी और बलवान् राक्षसों से आंख बचानी होगी।।34।।

लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया।
प्राप्तकालं प्रवेष्टुं में कृत्यं साणमितुं महत्।।35।।

अतः मुझे रात्रि के समय ही नगर में प्रवेश करना चाहिये और सीता का अन्वेषण रूप यह महान् समयोचित कार्य सिद्ध करने के लिए ऐसे रूप का आश्रय लेना चाहिये, जो आंख से देखा न जा सके। केचल कार्य से यह अनुमान हो कि कोई आया था।।35।।

तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराघर्षां सुरासुरैः।
हनूमांच्चिन्तयामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुछुः।।36।।

देवताओं और असुरों के लिए भी दुर्जय वैसी लंकापुरी को देखकर हनुमान जी बारंबार लंबी सांस खींचते यों विचार करने लगे।।36।।

केनोपायेन पश्मेयं मैथिलीं जनकात्यजाम्।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना।।37।।

किस उपाय से काम लूँ जिससे दुरात्मा राक्षसराज रावण की दृष्टि से ओझल रहकर मैं मिथलेशनन्दिनी जनक किशोरी सीता का दर्शन प्राप्त कर सकूं।।37।।

न विनश्येत् कथं कार्य रामस्य विदितित्मनः।
एकामेकस्तु पश्मेयं रहिते जनकात्मजाम्।।38।।

किस रीति से कार्य किया जाये जिससे जगद्विख्यात श्री रामचन्द्र जी का काम भी न बिगड़े और मैं एकान्त में अकेली जानकी जी से भेंट भी कर लूँ।।38।।

भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः।
विकल्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये ग्रथा।।39।।

NOTES

कई बार कातर अथवा अविवेकपूर्ण कार्य करने वाले दूत के हाथ में पड़कर देश और काल के विपरीत व्यवहार होने के कारण बने बनाये काम भी उसी तरह बिगड़ जाते हैं, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है।।39।।

अथनिर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि प शोभते।
घातमन्तीह कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः।।40।।

राजा और मन्त्रियों के द्वारा निश्चित किया हुआ कर्तव्याकर्तव्य विषयक विचार भी किसी अविवेकी दूत का आश्रय लेने से शोभा नहीं पाता है। अपने को पण्डित मानने वाले अविवेकी दूत सारा काम ही चौपट कर देते हैं।

न विनश्येत् कथंकार्यं वक्लव्यं न कथं भवेत्।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेद् वृथा।।41।।

अच्छा तो किस उपाय का अवलम्बन करने से स्वामी का कार्य नहीं बिगड़ेगा, मुझे घबराहट या अविवेक नहीं होगा और मेरा यह समुद्र का लांघना भी व्यर्थ नहीं होने पायेगा।।41।।

मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदित्मनः।
भवेद् व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थभिच्छतः।।42।।

यदि राक्षसों ने मुझे देख लिया तो रावण का अनर्थ चाहने वाले विख्यातनामा भगवान् श्रीराम का यह कार्य सफल न हो सकेगा।।42।।

नहि शक्यं क्वचित् स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित्।।43।।

यहां दूसरे किसी रूप की बात ही क्या है, राक्षस का रूप धारण करके भी राक्षसों से अज्ञात रहकर कहीं ठहरना असम्भव है।।43।।

वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदति मतिमर्म।
नह्मत्राविदितं किंचिद् राक्षसां भीमकर्मणाम्।।44।।

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि राक्षसों से छिपकर वायुदेव भी इस पुरी में विचरण नहीं कर सकते, यहां कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जो इन राक्षसों को ज्ञात न हो।।44।।

NOTES

इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवतः।
विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हास्र्यति।।45।।

यदि यहाँ मैं अपने इस रूप से छिपकर भी रहूंगा तरो मारा जाऊँगा और मेरे स्वामी के कार्य में भी हानि पहुंचेगी।।45।।

तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः।
लङ्कामभिपतिभ्यामि राघवस्यार्थसिद्धये।।46।।

अतः मैं श्री रघुनाथ जी का कार्य सिद्ध करने के लिये रात में अपने इसी रूप से छोटा–साशरीर धारण करके लंका में प्रवेश करूंगा।।46।।

रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रश्यि सुदुरासदाम्।
प्रविश्य भवनं सर्वे द्रक्ष्यामि जनकात्यजाम्।।47।।

यद्यपि रावण की इस पुरी में जाना बहुत ही कठिन है, तथापि रात को इसके भीतर प्रवेश करके सभी घरों में घुसकर मैं जानकी जी की खोज करूंगा।।47।।

इति निश्चित्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमयं कपिः।
आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्म दर्शनोत्सुकः।।48।।

ऐसा निश्चय करके वीर वानर हनुमान विदेह नन्दिनी के दर्शन के लिए उत्सुक हो उस समय सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे।।48।।

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारूतिः।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः।।49।।

सूर्यास्त हो जाने पर रात के समय उन पवनकुमार ने अपने शरीर को छोटा बना लिया। वे बिल्ली के बराबर होकर अत्यन्त अद्भुत दिखाई देने लगे।।49।।

2.1.6 प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्पत्य वीर्यवान्।

प्रविवेश पुरी रम्यां प्रविभक्तमहापथाम्।।50।।

प्रदेषकाल में पराक्रमी हनुमान तुरंत ही उछलकर उस रमणीय पुरी में घुस गये। वह नगरी पृथक–पृथक बने हुए चौड़े और विशाल राजमार्गों से सुशोभित थीं।।50।।

प्रासादमालाविततां स्तम्भैः काञ्चनसंनिभैः।
शातकुम्भनिभैर्जालैगैन्धर्वनगरोपमाम्।।51।।

उसमें प्रसादों की लंबी पंक्तियां दूर तक फैली हुई थीं। सुनहरे रंग के खम्भों और सोने की जातियों से विभूषित वह नगरी गन्धर्वनगर के समान रमणीय प्रतीत होती थी।।51।।

NOTES

सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम्।
तलैः स्फाटकसंकीर्णैः कार्तस्वर विभूषितैः।।52।।
वैदूर्यमणिचित्रैश्च मुक्ताजालविभूषितैः।
तैस्तैः शुशुभिरे तानि भवनान्यत्र रक्षसाम्।।53।।

हनुमान जी ने उस विशाल पुरी को सतमहले, अठमहले मकानों और सुवर्णजटित स्फटिक मणि की फसों से सुशोभित देखा। उनमें वैदर्य भी जड़े गये थे, जिससे उनकी विचित्र शोभा होती थी, मोतियों की जालियां भी उन महलों की शोभा बढ़ाती थीं। उन सबके कारण राक्षसों के वे भवन बडी सुन्दर शोभा से सम्पन्न हो रहे थे।।52–53।।

काञ्चनानि विचित्राणी तोरणानि च रक्षसाम्।
लङ्कामुद्योतयामासुः सर्वतः समलंकृताम्।।54।।

सोने के बने हुए विचित्रफाटक सब ओर से सजी हुई राक्षसों की उस लंका को और उद्दीप्त कर रहे थे।।54।।

अचिन्तयामद्भुताकारां दृष्ट्वा लङ्कां महाकपिः।
आसीद् विषण्णो हृष्टश्च वैदेह्या दर्शनोत्सुकः।।55।।

ऐसी अचिन्त्य और अद्भुत आकारवाली लंका को देखकर महाकपि हनुमान विषाद में पड़ गये, परंतु जानकी जी के दर्शन के लिए उनके उनमें बड़ी उत्कण्ठा थी, इसलिये उनका हर्ष और उत्साह भी कम नहीं हुआ।।55।।

स पाण्डुराविद्धविमानमालिनीं
महार्हजाम्बूनद जालतोरणाम्।
यशस्विनीं रावणबाहुपालितां
क्षपाचरैर्भंमबलैः सुपात्रिताम्।।56।।

परस्पर सटे हुए श्वेतवर्ण के सतमंजिले महलों की पंक्तियां लंकापुरी की शोभा बढ़ा रही थीं। बहुमूल्य जाम्बूनद नामक सुवर्ण की जालियों और वन्दनवारों से वहां के घरों को सजाया गया था। भयंकर बलशाली निशाचर उस पुरी की अच्छी तरह रक्षा करते थे। रावण के बाहुबल से भी वह सुरक्षित थी। उसके यश की ख्याति सुदूर तक फैली हुई थी। ऐसी लंकापुरी में हनुमान जी ने प्रवेश किया।।56।।

चन्द्रोऽपिसाचिव्यमिवास्य कुर्वे–

स्तारागणैर्मध्यगतो विराजन्।

ज्योत्सनावितानेन वितत्य लोका–

नुत्तिष्ठतेऽनेकसहस्त्ररश्मिः।।57।।

NOTES

उस समय तारागणों के साथ उनके बीच में विराजमान अनेक सहस्त्र किरणों वाले चन्द्रदेव भी हनुमान जी की सहायता सी करते हुए समस्त लोकों पर अपनी चांदनी का चंदोवा–सा तानकर उदित हो गये।।57।।

शङ्खप्रभं क्षीरमृणालवर्ण–

मुद्गच्छमानं व्यवभासमानम्।

ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः

पोप्लूयमानं सरसीव हंसम्।।58।।

वानरों के प्रमुख वीर श्री हनुमान जी ने शंख की सी कान्ति तथा दूध और मृणाल के से वर्ण वाले चन्द्रमा को आकाश में इस प्रकार उदित एवं प्रकाशित होते देखा, मानों किसी सरोवर में कोई हंस तैर रहा हो।।58।।

सूची प्रश्न

निम्नांकित श्लोकों में से किन्हीं दो की ससंदर्भ व्याख्या कीजिए।

प्र. 1. ततो रावणनीतायाः ..... पधि।।

2. दुधुवे च ..... तोयदः।।

3. ततः पादमुक्तेन ..... हरिः।।

4. शताम्यहं ..... शतयोजनम्।।

5. अनेन ..... क्रूरैर्बलसंमन्वितः।।

प्रदत्त कार्य :

कपीश्वर हनुमान जी सौन्दर्य वर्णन के दो श्लोक अर्थ सहित कण्ठस्थ करके लिखिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. रामायण महर्षि बाल्मीकि कृत, गीताप्रेस गोरखपुर

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय

इकाई–द्वितीय

NOTES

भूमिका

उद्देश्य

2.2.1 राक्षस रावण का महल– वास्तुकला एवं सौन्दर्य का अप्रतिम उदाहरण।

2.2.2 हनुमान द्वारा अन्यान्य राक्षरों के घरों में सीता जी की खोज करना।

2.2.3 सीताजी की खोज करते हुये हनुमान का सैनिकों द्वारा रक्षित रावण के महल में प्रवेश।

2.2.4 रावण के महल के आन्तरिक परिदृश्य का वर्णन।

2.2.5 पुष्पक विमान का वर्णन।

2.2.6 रावण के महल में सीता को न पाने पर हनुमान जी का विस्मित होकर दुःखी होना।

सूची प्रश्न

प्रदत्त कार्य

सन्दर्भ ग्रन्थ

इकाई–द्वितीय

NOTES

भूमिका :

सीता की खोज करते हुये कपिश्रेष्ठ हनुमान जी अत्यन्त लघु रूप में लंका में प्रवेश करने के उपरान्त राक्षसराज रावण के महल में प्रवेश करते हैं। रावण का महल प्राचीन वास्तुकला की भव्यता का अप्रतिम उदाहरण है। सुवर्णमयी लंका की समृद्धि को देखकर वानर राज हनुमान आश्चर्यचकित हो जाते हैं। पुनः क्रमशः प्रमुख राक्षसों एवं सैन्य अधिकारियों के महलों में घुसकर सीता का पता लगाते हैं। सीता की खोज करते हुये अंत में हनुमान जी भयंकर राक्षस राक्षसियों द्वारा रावण के महल में प्रवेश करते हैं। वहीं पर उन्हें दिव्य पुष्पक विमान भी दिखाई पड़ता है। जिसकी शोभा अवर्णनीय है। अंत में रावण के महल में भी सीता को न पाने पर हनुमान जी विस्मित होकर दुःखी हो जाते हैं।

उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य कपि श्रेष्ठ हनुमान द्वारा रावण तथा अन्यान्य राक्षसों के घरों में सीता की खोज के दृश्य का तथा हनुमान जी के अन्तर्मन में उठे भावों का विवेचन करना है। इस इकाई को पढ़कर आप बाल्मीकि रामायण में वर्णित लंकापुरी, प्रमुख–प्रमुख राक्षसों एवं सेनाधिकारियों के महलों सहित राक्षसराज रावण के महल के बारे में जानकारी प्राप्त करने के साथ ही दिव्य पुष्पक विमान के बारे में अवगत हो सकेंगे।

2.2.1

NOTES

षष्ठः सर्गः

हनुमान जी का रावण तथा अन्यान्य राक्षसों के घरों में सीता जी की खोज करना

स निकायं विमानेषु विचरन् कामरूप धृक्।

विचचार कपिर्लङ्कां लाघवेन समन्वितः।।1।।

फिर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले कपिवर हनुमान जी बड़ी शीघ्रता के साथ लंका के सतमहले मकानों में यथेच्छ विचरने लगे।

आससाद च लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्र निवेशनम्।

प्रकारेणार्कवर्णेन भास्वरेणाभि संवृतम्।।2।।

अत्यन्त बल वैभव से सम्पन्न वे पवन कुमार राक्षसराज रावण के महल में पहुंचे, जो चारों ओर से सूर्य के समान चम–चमाते हुये सुवर्णमय परकोटों से घिरा हुआ था।

रक्षितं राक्षसैर्भीमैः सिंहैरिव महद् वनम्।

समीक्षमाणो भवनं चकाशे कपिकुञ्जरः।।3।।

जैसे सिंह विशाल वन की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार बहुतेरे भयानक राक्षस रावण के उस महल की रक्षा कर रहे थे। उस भवन का निरीक्षण करते हुये कपिकुञ्जर हनुमान्–जी मन ही मन हर्ष का अनुभव करने लगे।

रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तरोरणैर्हेमभूषणैः।

विचित्राभिश्च कक्षयाभिर्द्वारैश्च रूचिरैर्वृतम्।।4।।

वह महल चांदी से मढ़े हुये चित्रों, सोने से जड़े हुये दरवाजों और बड़ी अदभुत ड्योढ़ियों तथा सुन्दर द्वारों से युक्त था।

गजास्थितैर्महामात्रैः शूरैश्च विगतश्रयैः।

उपस्थितमसंहार्यैर्हयैः स्यन्दनयायिभिः।।5।।

हाथी पर चढ़े हुये महावत तथा श्रमहीन शूरवीर वहां उपस्थित थे। जिनके वेग को कोई रोक नहीं सकता था, ऐसे रथवाहक अश्व भी वहां शोभा पा रहे थे।

NOTES

सिंहव्याघ्रतनु त्राणैद्वन्तिकाञ्चनराजतीः।

घोषर्वाद्भर्विचित्रैश्च सदा विचरितं रथैः।।6।।

सिंहों और बाघों के चमड़ों के बने हुये कवचों से वे रथ ढके हुये, उनमें हाथी–दांत, सुवर्ण तथा चांदी की प्रतिमाएँ रखी हुई थीं। उन रथों में लगी हुई छोटी–छोटी घंटिकाओं की मधुर ध्वनि वहां होती रहती थी, ऐसे विचित्र रथ उस रावण – भवन में सदा आ–जा रहे थे।

बहुरत्नसमाकीर्णे परार्ध्यासभूषितम्।

महारथ समावापं महारथमहासनम्।।7।।

रावण का वह भवन अनेक प्रकार के रत्नों से व्याप्त था, बहुमूल्य आसन उसकी शोभा बढ़ाते थे। उनमें सब ओर बड़े–बड़े रथों के ठहरने के स्थान बने थे और महारथी वीरों के लिये विशाल वासस्थान बनाये गये थे।

दृश्यैश्च परमोदारैस्तैस्तैश्च मृगपक्षिभिः।

विविधैर्बहुसाहस्रैः परिपूर्णं समन्ततः।।8।।

दर्शनीय एवं परम सुन्दर नाना प्रकार के सहस्त्रों पशु और पक्षी वहां सब ओर से भरे हुये थे।

विनीतैरन्त पालैश्च रक्षोभिक्ष सुरक्षितम्।

मुख्याभिश्च वरस्त्रीभिः परिपूर्णे समन्ततः।।9।।

सीमा की रक्षा करने वाले विनयशील राक्षस उस भवन की रक्षा करते थे। वह सब ओर से मुख्य सुन्दरियों से भरा रहता था।

मुदितप्रभछारत्नं राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।

वराभरण संह्रादैः समुद्रस्वननिःस्वनम्।।10।।

वहां की रत्न स्वरूपा युवती रमणियां सदा प्रसन्न रहा करती थीं। सुन्दर आभूषणों की झनकारों से झंकृत राक्षसराज का वह महल समुद्र के कलकलनाद की भांति मुखरित रहता था।

तद राजगुण सम्पन्नं मुख्यैश्च वरचन्दनैः।

महाजन समाकीर्णे सिंहैरिव महद् वनम्।।11।।

वह भवन राजोचित सामग्री से पूर्ण था, श्रेष्ठ एवं सुन्दर चन्दनों से चर्चित था तथा सिंहों से भरे हुये थे, विशाल वन की भांति प्रधान प्रधान पुरूषों से परिपूर्ण था।

NOTES

भेरीमृदङ्गाभिरूतं शङ्खघोषविनादितम्।

निम्यार्चितं पर्वसुतं पूजितं राक्षसैः सदा।।12।।

वहां मेरी और मृदङ्ग की ध्वनि सब ओर फैली हुई थी। वहां शंख की ध्वनि गूंज रही थी। उसकी नित्य पूजा एवं सजावट होती थी। पर्वों के दिन वहां होम किया जाता था। राक्षस लोग सदा ही उस राजभवन की पूजा करते थे।

समुर्द्रामेव गम्भीरं समुद्रसमनिःस्वनम्।

महात्मनों महद् वेश्य महारत्नपरिच्छदम्।।13।।

वह समुद्र के समान गम्भीर और उसी के समान कोलाहल पूर्ण था। महामना रावण का वह विशाल भवन महान् रत्नमय अलंकारों से अलंकृत था।

महारत्नसमाकीर्णे ददर्श स महाकविः।

विराजमाने वपुषा गजाश्वरथसंकुलम्।।14।।

उसमें हाथी–घोड़े और रथ भरे हुये थे तथा वह महान्रत्नों से व्याप्त होने के कारण अपने स्वरूप से प्रकाशित हो रहा था। महाकपि हनुमान ने उसे देखा।

लङ्काभरणमित्येव सोऽमन्यत महाकपिः।

चचार हनुमांस्तत्र रावणस्य समीपतः।।15।।

देखकर कपिवर हनुमान् ने उस भवन को लंका का आभूषण ही माना। तदन्तर वे उस रावण भवन के आस–पास ही विचरने लगे।

2.2.2

गृहाद् गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः।

वीक्षमाणोऽप्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः।।16।।

इस प्रकार वे एक घर से दूसरे घर में जाकर राक्षसों के बगीचों के सभी स्थानों को देखते हुये बिना किसी भय से अट्टालियों पर विचरण करने लगे।

अवप्लुत्य महावेगः प्रहस्तस्य निवेशनम्।

ततोऽन्यत् पुप्लुवे वेश्य महापार्श्वस्य वीर्यवान्।।17।।

महान वेगशाली और पराक्रमी वीर हनुमान वहां से कूदकर प्रहस्त के घर में उतर गये। फिर वहां से उछले और महापार्श्व के महल में पहुंच गये।

NOTES

अथ मेघप्रतीकाश कमुम्भकर्ण निवेशनम्।

विभीषणस्य च तथा पुप्लुवे स महाकपिः।।18।।

तदन्तर वे महाकपि हनुमान् मेघ के समान प्रतीत होने–वाले कुम्भकर्ण के भवन में और वहाँ से विभीषण के महल में कूद गये।

महोदरस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैवहि।

विद्युज्जिह्वस्य भवनं विद्युन्मालेस्तैव च।।19।।

इसी तरह क्रमशः वे महोदर, विरूपाक्ष विद्युज्जिह्व और विद्युन्मालि के घर में गये।

वज्रदंष्ट्रस्थ च तथा पुप्लुवे स महाकपिः।

शुकस्य च महावेगः सारणस्य च धीमतः।।20।।

इसके बाद महान् वेगशाली महाकपि हनुमान् ने फिर छलांग मारी और वे वज्रदंष्ट्र, शुक तथा बुद्धिमान् सारण के घरों में जा पहुंचे।

तथा चेन्द्रजितो वेश्य जगाम हरियूथपः।

जम्बुमालेः सुमालेश्च जगाम हरिसत्तमः।।21।।

इसके बाद वे वानर–यूथपति कपिश्रेष्ठ इन्द्रजित् के घर में गये और वहां से जम्बूमालि के घर में पहुंच गये।

रश्मिकेतोश्च भवनं सूर्यशत्रोस्तथैव च।

वज्रकायस्य च तथा पुप्लुवे स महाकविः।।

तदनन्तर वे महाकपि उछलते–कूदते हुये रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु और वज्रकाय के महलों में जा पहुंचे।

धूम्राक्षस्याथ सम्पातेर्भवनं मारुतात्मजः।

विद्युद्रूपस्य भीमस्य घनस्य विघनस्य च।।23।।

शुकनाभस्य चक्रस्य राठस्य कपटस्य च।

ह्रस्वकर्णस्य दंष्ट्रस्य लोभरास्य च राक्षसः।।24।।

युद्धोन्मतस्य मत्तस्य ध्वजग्रीवस्य सादिनः।

विद्युज्जिह्वद्विजिद्वानां तथा हस्तिमुखस्य च।।25।।

करालस्य पिशाचस्य शाणिताक्षस्य चैव हि।

पल्लवमानः क्रमेणैव हनुमान् मारूतात्मजः।।26।।

तेषु तेषु महार्हेषु महायशाः।

तेषामृद्धिमता मृद्धि ददर्श स महाकपिः।।27।।

फिर क्रमशः वे कपिवर पवनकुमार धूमाक्ष, सम्पाति, विद्युद्रूप, भीम, घन विघन, शुकनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, लोमश, युद्धोन्मन्त, मत्त, ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, पिशाच और रोणिताक्ष आदि के महलों में गये। इस प्रकार क्रमशः कूदते–फांदते हुये महायशस्वी पवनपुत्र हनुमान उन–उन बहुमूल्य भवनों में पधारे। वहां उन महाकपि ने उन समृद्धशाली राक्षसों की समृद्धि देखी।।23–27।।

2.2.3

सर्वेषां समतिक्रम्य भवनानि समन्ततः।

आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्रनिवेशनम्।।28।।

तत्पश्चात् बल–वैभव से सम्पन्न हनुमान उन सब भवनों को लांघकर पुनःराक्षस राज रावण के महल पर आ गये।

रावणस्योपशायिन्यों ददर्श हरिसत्तमः।

विचरन् हरिशार्दूलो राक्षसीविकृतेक्षणाः।।29।।

वहाँ विचरते हुये उन वानर शिरोमणि कपिश्रेष्ठ ने रावण के निकट सोने वाली (उस पलंग की रक्षा करने वाली) राक्षसियों को देखा, जिनकी आंखे बड़ी विकराल थीं।

शूलभुद्गहस्तांश्च शक्तितोमरधारिणः।

ददर्श विविधान्युगुल्मांस्तस्य रक्षः पते र्गृहे।।30।।

साथ ही, उन्होंने उस राक्षसराज के भवन में राक्षसियों के बहुत से समुदाय देखे, जिनके हाथों में शूल, मुद्गर, शक्ति और तोमर आदि अस्त्र–शस्त्र विद्यमान थे।

राक्षसांश्च महाकायान् नानाप्रहरणोद्यतान्।

रक्ताञ्श्वेतान् सितांश्चपिहरीश्चापि महाजवान।।31।।

NOTES

उनके सिवा, वहां बहुत से विशालकाय राक्षस भी दिखाई दिये जो नाना प्रकार के हथियारों से लैस थे। इतना ही नहीं वहां लाल और सफेद रंग से बहुत से अत्यन्त वेगशाली घोड़े भी बंधे हुये थे।

NOTES

कुलीनान रूपसम्पन्नान् गजान् पर गजारूजान्।

शिक्षितान् गजशिश्वायाभैरावत समान् युधि।।32।।

निहन्तृन् परसैन्यानां गृहे तस्मिन् ददर्श सः।

क्षरतश्च यथा मेधान् भ्रवतश्च यथा गिरीन्।।33।।

मेघस्तानतनिर्घोषान् दुर्धर्षान् समरे परैः।

साथ ही अच्छी जाति के रूपवान हाथी भी थे, जो शत्रु सेना के हाथियों को मार भगाने वाले थे। वे सब के सब गज शिक्षा में सुशिक्षित युद्ध में ऐरावत के समान पराक्रमी तथा शत्रुसेनाओं का संहार करने में समर्थ थे। वे बरसते हुये मेघों और झरने बहाते हुए पर्वतों के समान मद की धारा बहा रहे थे। उनकी गर्जना मेघगर्जना के समान जान पड़ती थी। वे समराङ्गण में शत्रुओं के लिये दुर्जन थे। हनुमान जी ने रावण के भवन में उन सबको देखा।।32–22।।

सहस्रं वाहिनीस्तत्र जाम्बूनपरिष्कृताः।।34।।

हेमजालैर विच्छिन्नास्तरूणादित्यसंनिभाः।

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने।।35।।

राक्षसराज रावण के उस महल में उन्होंने सहस्त्रों ऐसी सेनाएं देखीं, जो जाम्बूनद के आभूषणों से विभूषित थीं। उनके सारे अंग सोने के गहनों से ढके हुये थे तथा वे प्रातःकाल के सूर्य की भांति उद्दीप्त हो रही थी।।34–35।।

2.2.4

शिबिका विविधाकाराः स कपिर्मारुतात्मजः।

लताग्रहाणि चित्राणि चित्रशाला गृहाणि च।।36।।

क्रीड़ाग्रहाणि चान्यानि दारूपर्वतकानि च।

कामस्य ग्रहकं रम्यं दिवागृहकमेव च।।37।।

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निवेशने।

पवन पुत्र हनुमान जी ने राक्षसराज रावण के उस भवन में अनेक प्रकार की पालकियां, विचित्र लताग्रह, चित्रशालायें, क्रीड़ाभवन, काष्ठमय क्रीड़ापर्वत, रमणीय विलासगृह और दिन में उपयोग में आने वाले विलासभवन भी देखे।।36–37।।

NOTES

स मन्दरसमग्रप्रख्यं मयूरस्थानसंकुलम्।।38।।

ध्वजर्याष्टभिराकीर्णं ददर्श भवनोत्तमम्।

अनन्तरत्ननिचयं निधिजालं समन्ततः।

धीरनिष्ठितकर्माङ्ग गृहं भूतपतेरिव।।39।।

उन्होंने वह महल मन्दराचल के समान ऊँचा, क्रीड़ा–मयूरों के स्थानों से युक्त, ध्वजाओं से व्याप्त, अनन्तरत्नों का भण्डार और सब ओर से निधियों से भरा हुआ देखा। उसमें धीर पुरूषो ने निधिरक्षा के उपयुक्त कर्माङ्गों का अनुष्ठान किया था तथा वह साक्षात् भूतनाथ (महेश्वर या कुबेर) के भवन के समान जान पड़ता था।

अर्चिभिश्चापि रत्नानां तेजसा रावणस्य च।

विरराज च तदवेश्य रश्मिवानिव रश्मिभिः।।40।।

रत्नों की किरणों तथा रावण के तेज के कारएा वह घर किरणों से युक्त सूर्य के सामन जगमगा रहा था।

जम्बूनदमयान्येव शयनान्यासनानि च।

भाजनानि च शुभ्राणि ददर्श हरियूथपः।।41।।

वानर यूथपति हनुमान ने वहां के पलंग, चौकी और पात्र सभी अत्यन्त उज्जवल तथा जाम्बूनद सुवर्ण के बने हुये ही देखे।

मध्वासवकृतक्लेदं मणिभाजनसंकुलम्।

मनोरममसम्बाधं कुबेरभवनं यथा।।42।।

नुपुराणां च घोषेण काञ्चीनां निःस्वनेनच।

मृदङ्गतलनिर्घो षैवद्भिर्विनादितम्।।43।।

उसमें मधु और आसव के गिरने से वहां की भूमि गीली हो रही थी। मणिमय पात्रों से भरा हुआ वह सुविस्तृत महल कुबेर–भवन के समान मनोरम जान पड़ता था। नूपुरों की झनकार, करधनियों की खनखनाहट, मृदंङ्गों और तालियों की मधुर ध्वनि तथा अन्य गम्भीर घोष करने वाले वाघों से वह भवन मुखरित हो रहा था।।42–43।।

प्रासादसंघातयुतं स्त्रीरत्नशतसंकुलम्।

सुव्यूढकक्ष्यं हनुमान् प्रविवेश महागृहम्।।44।।

NOTES

उसमें सैकड़ों अट्टालिकाएं थीं, सैकड़ों रमणी–रत्नों से वह व्याप्त था। उसकी ड्योढ़ियां बहुत बड़ी–बड़ी थीं। ऐसे विशाल भवन में हनुमान जी ने प्रवेश किया।

सप्तमः सर्गः

रावण के भवन एवं पुष्पक विमान का वर्णन

NOTES

स वेश्यजालं बलवान् ददर्श

व्यासक्तवैदूर्य सुवर्ण जालम्।

यथा महत्प्रावृपि मेघजालं

विद्युत्पिनद्धं सविहङ्गजालम्।।1।।

बलवान वीर हनुमान जी ने नीलम से जड़ी हुई सोने की खिड़कियों से सुशोभित तथा पक्षि–समूहों से युक्त भवनों का समुदाय देखा, जो वर्षाकाल में बिजली से युक्त महती मेघमाला के समान मनोहर जान पड़ता था।

निवेशनानां विविधाश्च शालाः

प्रधानशङ्खायुधचापशालाः।

मनोहराश्चापि पुनर्विशाला

ददर्श वेश्याद्रिषु चन्द्रशालाः।।2।।

उसमें नाना प्रकार की बैठकें, शंख आयुध और धनुषों–मुख्य–मुख्य शालाएँ तथा पर्वतों के समान ऊँचे महलों के ऊपर मनोहर एवं विशाल चन्द्रशालाएँ (अट्टालिकाएँ) देखीं।

गृहाणि नानावसुराजितानि

देवासुरैश्चापि सुपूजितानि।

सर्वैश्च दोषैः परिवर्जितानि

कपिर्ददर्श स्वबलार्जिजानि।।3।।

कपिवर हनुमान् ने वहां नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित ऐसे–ऐसे घर देखे, जिनकी देवता और असुर भी प्रशंसा करते थे। वे गृह सम्पूर्ण दोषों से रहित थे तथा रावण ने उन्हें अपने पुरुषार्थ से प्राप्त किया था।

तानि प्रयत्नाभिसमाहितानि

मयेन साक्षादिव निर्मितानि।

महीतले सर्वगुणोत्तराणि

ददर्श लङ्काधिपतेर्गृहाणि।।4।।

NOTES

वे भवन बड़े प्रयत्न से बनाये गये थे और ऐसे अद्भुत लगते थे, मानों साक्षात् मय दानव ने ही उनका निर्माण किया हो। हनुमान जी ने उन्हें देखा, लंकापति रावण के वे घर इस भूतल पर सभी गुणों में सबसे बढ़–चढ़कर थे।

ततो ददर्शोच्छ्रितमेघरूपं

मनोहरं काञ्चनचारूरूपम्।

रक्षोऽधिपस्यात्मबलानुरूपं

गृहोत्तमं घ्रप्रतिरूपरूपम्।।5।।

फिर उन्होंने राक्षसराज रावण का उसकी शक्ति के अनुरूप अत्यन्त उत्तम और अनुपम भवन (पुष्पक विमान) देखा, जो मेघ के समान ऊँचा था सुवर्ग के समस्त सुन्दर कान्ति वाला तथा मनोहर था।।5।।

महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्णे

श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम्।

नानातरूणां कुसुमावकीर्णे

गिरेखिाग्रं रजसावकीर्णम्।।6।।

वह इस भूतल पर बिखरे हुये स्वर्ण के समान जान पड़ता था। अपनी कान्ति से प्रज्वलित सा हो रहा था। अनेकानेक रत्नों से व्याप्त, भांति–भांति के वृक्षों से आच्छादित तथा पुष्पों के पराग से भरे हुये पर्वत–शिखर के समान शोभा पाता था।

नारीप्रवेकैरिव दीप्यमानं

तडिद्भिरम्भोधरमर्च्यमानम्।

हंसप्रवेकैरिव वाद्यमानं

श्रिया युतुं खे सुकृतं विमानम्।।7।।

वह विमानरूप भवन विद्युन्मालाओं से मेघ के समान रमणी–रत्नों से देदीप्यमान हो रहा था और श्रेष्ठ हंसों द्वारा आकाश में ढोये जाते हुये विमान की भांति जान पड़ता था। उस दिव्य विमान को बहुत सुन्दर ढंग से बनाया गया था। वह अद्भुत शोभा से सम्पन्न दिखाई देता था।

यथा नगाग्रं बहुधातुचित्रं

यथा नभश्च ग्रहचन्द्रचित्रम्।

ददर्श युक्तीकृतचारुमेघ –

चित्रं विमानं बहुरत्नचित्रम्।।8।।

NOTES

जैसे अनेक धातुओं के कारण पर्वत शिखर, ग्रहों और चन्द्रमाके कारण आकाश तथा अनेक वर्णों से युक्त होने के कारण मनोहर मेघ विचित्र शोभा धारण करते हैं, उसी तरह नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित होने के कारण वह विमान भी विचित्र शोभा से सम्पन्न दिखाई देता था।

महीकृता पर्वताराजिपूर्णा

शैलाः कृता वृक्षवितानपूर्णाः

वृक्षाः कृता पुण्यवितानपूर्णाः

पुष्वं कृतं केसर पत्रपूर्णम्।।9।।

उस विमान की आधारभूमि (आरोहियों के खड़े होने का स्थान) सोने और मणियों के द्वारा निर्मित कृत्रिम पर्वत–मालाओं से पूर्ण बनायी गयी थी। वे पर्वत वृक्षों की विस्तृत पंक्तियों से हरे–भरे रचे गये थे। वे वृक्ष फलों के बाहुल्य से व्याप्त बनाये गये थे तथा वे पुण्य भी केसर एवं पंखुड़ियों से पूर्ण निर्मित हुये थे।

कृतानि वेश्मानि च पाण्डुराणि

तथा सुपुढपाण्यपि पुष्कराणि।

पुनश्च पद्यानि सकेसराणि

वनानि चित्राणि सरोवराणि।।10।।

उस विमान में श्वेत भवन बने हुये थे। सुन्दर फूलों से सुशोभित पोखरे बनाये गये थे। केसरयुक्त कमल, विचित्र बन और अद्‌भुत सरोवरों का भी निर्माण किया गया था।

पुष्पाद्वयं नाम विराजमानं

रत्नप्रभाभिश्च विघुर्णमानम्।

वेश्मोत्तमानामपि चोच्चमानं

महाकपिस्तत्र महाविमानम्।।11।।

महाकपि हनुमान ने जिस सुन्दर विमान को वहां देखा, उसका नाम पुष्पक था। वह रत्नों की प्रभा से प्रकाशमान था और इधर–उधर भ्रमण करता था। देवताओं के गृहाकार उत्तम विमानों में सबसे अधिक आदर उस महाविमान पुष्पक का ही होता था।

NOTES

कृताक्ष वैदूर्यमया विहङ्गमः

रूप्यप्रवालैश्च तथा विहङ्गाः।

चित्राक्ष नानाबसुभिर्भुजङ्गाः

जात्यानुरूपास्तुरगाः शुभाङ्गा।।12।।

उसमें नीलम, चांदी और मूंगों के आकाशचारी पक्षी बनाये गये थे। नाना प्रकार के रत्नों से विचित्रवर्ण के सर्पों का निर्माण किया गया था और अच्छी जाति के घोड़ों के समान ही सुन्दर अंग वाले अश्व भी बनाये गये थे।

प्रवालजाम्बूनदपुष्पपक्षाः

सलीलमावर्जितजिह्म पक्षाः।

कानस्य साक्षादिव भान्ति पक्षाः

कृता विहङ्गाः सुमुखाः सुपक्षाः।।13।।

उस विमान पर सुन्दर मुख और मनोहर पंखवाले बहुत से ऐसे विहङ्गम निर्मित हुए थे, जो साक्षात् कामदेव के सहायक जान पड़ते थे। उनकी पांखे मूंगे और सुवर्ण के बने हुये फूलों से युक्त थीं तथा उन्होंने लीलापूर्वक अपने बांके पंखों को समेट रखा था।

नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः

सकेसराश्चोत्पलयत्रहस्ताः।

बभूव देवी च कृता सुहस्ता

लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्यहस्ता।।14।।

उस विमान के कमलमण्डित सरोवर में ऐसे हाथी बनाये गये थे, जो लक्ष्मी के अभिषेक–कार्य में नियुक्त थे। उनकी सूड़ बड़ी सुन्दर थी। उनके अंगों में कमलों के केसर लगे हुये थे तथा उन्होंने सूड़ों में कमल–पुष्प धारण किये थे। उनके साथ ही वहां तेजस्विनी लक्ष्मी देवी की प्रतिमा भी विराजमान थी, जिनका उन हाथियों के द्वारा अभिषेक हो रहा था। उनके हाथ बड़े सुन्दर थे। उन्होंने अपने हाथ में कमलपुष्प धारण कर रक्खा था।

इतीव तदगृहमभिगम्य शोभनं

सविस्मयो नगमिव चारूकन्दरम्।

पुनश्च तत्परम सुगन्धि सुन्दरं

हिमात्यये नगमिव चारुकन्दरम्।।15।।

NOTES

इस प्रकार सुन्दर कन्दराओं वाले पर्वत के समान तथा बसन्त ऋतु में सुन्दर कोटरों वाले परम सुगन्धयुक्त वृक्ष के सामान उस शोभायमान मनोहर भवन (विमान) में पहुंचकर हनुमान जी बड़े विस्मित हुये।

2.2.6

ततस्तदा बहुविधभावितात्मनः

कृतात्मनो जनकसुतां सुवर्त्मनः

अपश्यतोऽभवदतिदुखितं मनः

सचक्षुषः प्रविचरतो महात्मनः।।17।।

महात्मा हनुमान् जी अनेक प्रकार से परमार्थ–चिन्तन में तत्पर रहने वाले कृतात्मा (पवित्र अन्तःकरण वाले) सन्मार्गगामी तथा उत्तम दृष्टि रखने वाले थे। इधर–उधर बहुत घूमने पर भी जब उन महात्मा को जानकी जी का पता न लगा, तब उनका मन बहुत दुखी हो गया।

सूची प्रश्न :

निम्नांकित श्लोकों में से किन्हीं दो की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।

प्र.1. स निकायं ..... समन्वितः।।

प्र.2. सर्वेषां ..... निवेश्नम्।।

प्र.3. अर्चिभिश्चापि ..... रश्मिभिः।।

प्र.4. यथा नगाग्रं ..... बहुरत्नचित्रम्।।

प्र.5. इतीव ..... चारूकन्दरम्।।

प्रदत्त कार्य :

विद्यार्थी रावण के महल एवं पुष्पक विमान के वर्णन से संबंधित कम से कम 05 श्लोकों को अर्थ सहित कण्ठस्थ करें।

NOTES

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. रामायण, महर्षि बाल्मीकि कृत, गीता प्रेस गोरखपुर
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय।

इकाई–तृतीय

इकाई की रूपरेखा

भूमिका

NOTES

2.3.1 गीता की खोज में हनुमान जी का रावण की मधुशाला में प्रवेश एवं वहां के दृश्य का वर्णन।

2.3.2 रावण के अन्तःपुर में सीता को न पाने पर हनुमान जी के मन में संदेह की उत्पत्ति।

2.3.3 हनुमान जी के मन में धर्मलोप की आशंका और स्वतः उसका निवारण होना।

2.3.4 सीता जी के मरण की आशंका से हनुमान जी का शिथिल होना।

2.3.5 हतोत्साहित हनुमान जी का पुनः उत्साह का अवलम्बन लेकर अन्य स्थानों में सीताजी की खोज करना।

2.3.6 अन्यत्र भी सीता का पता न लगने पर पुनः चिंतित होना।

सूची प्रश्न

प्रदत्त कार्य

सन्दर्भ ग्रन्थ

इकाई–तृतीय

NOTES

भूमिका :

वाल्मीकि रामायण के द्वादश सर्ग में सीताजी की खोज में प्रथमतया असफल होने पर सीता जी के मरण की आशंका से हतोत्साहित होना, असफल हो जापे पर पुनः उत्साह का अवलम्बन लेते हुये अन्य स्थानों में सीताजी की खोज करना और कहीं भी न मिलने पर पुनः चिंतित होना आदि दृश्यों एवं मनोभावों का मनोहारी काव्यात्मक चित्रण किया गया है। वस्तुतः यही तथ्य इस इकाई का प्रतिपाद्य है।

उद्देश्य :

रावण के महल में अन्तःपुर तथा मधुशाला में सीता को न पाकर कपीश्वर हनुमान अत्यन्त चिंतित हो जाते है। उनके मन में नाना प्रकार के मनोभाव एवं आशंकाएं पैदा हो जाती हैं पुनः उत्साह का सहारा लेकर स्थिरमति हनुमान जी सीता जी की खोज में लग जाते हैं। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य पाठकों को उक्त समस्त भावों एवं दृश्यों से अवगत कराना है।

2.3.1

NOTES

एकादशः सर्गः

वह सीता नहीं है– ऐसा निश्चय होने पर हनुमान जी का पुनः अन्तःपुर में और उसकी पानभूमि में सीता का पता लगाना, उनके मन में धर्मलोप की आशंका और स्वतः उसका निवारण होना

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा।

जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः।।1।।

फिर उस समय इस विचार को छोड़कर महाकपि हनुमान जी अपनी स्वाभाविक स्थिति में स्थित हुये और वे सीता जी के विषय में दूसरे प्रकार की चिन्ता करने लगे।

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हतित भामिनी।

न भोक्तु नाव्यलंकुर्ते न पानमुपसेवितुम्।।2।।

(उन्होंने सोचा–) 'भामिनी सीता श्रीरामचन्द्र जी से बिछुड़ गयी हैं। इस दशा में न वे सो सकती हैं, न भोजन कर सकती हैं, न श्रृंगार एवं अलंकार धारण कर सकती हैं, फिर मदिरापान का सेवन तो किसी प्रकार भी नहीं कर सकतीं।

नान्यं नरमुपस्थातं सुराणार्माप चेश्वरम्।

न हि रामसमः कश्चिद् विद्यते त्रिदशेष्वपि।।3।।

वे किसी दूसरे पुरूष के पास, वह देवताओं का भी ईश्वर क्यों न हो, नहीं जा सकतीं। देवताओं में भी कोई ऐसा नहीं है जो श्रीरामचन्द्र जी की समानता कर सकें।

अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र भचार सः।

पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासंदर्शनोत्सुकः।।4।।

अतः अवश्य ही यह सीता नहीं, कोई दूसरी स्त्री है। ऐसा निश्चय करके वे कपिश्रेष्ठ सीता जी के दर्शन के लिए पुनः उत्सुक हो वहां की मधुशाला में विचरने लगे।।4।।

क्रीडितेनापराः कल्लान्ता गीतेन च तथापराः।

नृत्येन चापराः कल्लान्ता पानप्रिहतास्तथा।।5।।

वहां कोई स्त्रियां क्रीड़ा करने से थकी हुई थीं तो कोई गीत गाने से। दूसरी नृत्य करके थक गयी थीं और कितनी ही स्त्रियां अधिक मद्यपान करके अचेत हो रही थीं।।5।।

NOTES

मुरजेषु मृदङ्गेषु चेलिकासु च संस्थिताः।

तथाऽऽस्तरणमुख्येषु संविष्टाश्चापराः स्त्रियः।।6।।

बहुत सी स्त्रियां ढोल मृदङ्ग और चेलिका नामक वाद्यों पर अपने अंगों को टेककर सो गयी थीं तथा दूसरी महिलाएं अच्छी अच्छे बिछौनों पर सोयी हुई थीं।।6।।

अङ्गनानां सहस्त्रेण भूषितैन विभूषणैः।

रूपसंलापशीलेन युक्तगीतार्थभाषिणा।।7।।

देशकालाभियुक्तेन युक्तवाक्याभिधामिना।

रताधिकेन संयुक्ता ददर्श हरियूथपः।।8।।

वानर यूथ पति हनुमान् जी ने उस पान भूमि को ऐसी सहस्त्रों रमणियों से संयुक्त देखा जो भांति भांति के आभूषणों से विभूषित, रूप–लावण्य की जानकारी करने वाली, गीत के समुचित अभिप्राय को अपनी वाणी द्वारा प्रकट करने वाली, देश और काल को समझने वाली, उचित बात बोलने वाली और रति क्रीड़ा में अधिक भाग लेने वाली थी।।7–8।।

अन्यत्रापि वरस्त्रीणां रूपसंलापशायिनाम्।

सहस्त्रं सुवतीनां तु प्रसुप्तं स ददर्श ह।।9।।

दूसरे स्थान पर भी उन्होंने ऐसी सहस्त्रों सुन्दरी युवितयों को सोते देखा, जो आपस में रूप सौन्दर्य की चर्चा करती हुई लेट रही थीं।।9।।

देशकालाभियुक्तं तु युक्तवाक्याभिधायितत्।

रताविरतसंसुप्तं ददर्श हरियूथपः।।10।।

वानरयूथपति पवनकुमार ने ऐसी बहुत सी स्त्रियों को देखा जो देश–काल को जानने वाली, उचित बात कहने वाली तथा रतिक्रीड़ा के पश्चात् गाढ़ निद्रा में सोयी हुई थीं।।10।।

तासां मध्ये महाबाहुः शशुभे राक्षसेश्वरः।

गोष्ठे महति मुख्यानां गवां मध्ये यथा वृषाः।।11।।

उन सबके बीच में महाबाहु राक्षसराज रावण विशाल गोशाला में श्रेष्ठ गौओं के बीच सोये हुए साँढ़ की भांति शोभा पा रहा था।।11।।

स राक्षसेन्द्रः शुशुभे ताभिः परिवृतः स्वयम्।

करेणुभिर्यथारण्ये परिकीर्णो महाद्विपः।।12।।

जैसे वन में हाथियों के बीच घिरा हुआ कोई विशाल गजराज सो रहा हो, उसी प्रकार उस भवन में उन सुन्दरियों से घिरा हुआ स्वयं राक्षसराज रावण सुशोभित हो रहा था।।12।।

NOTES

सर्वकामैरुपेतां च पानभूमिं महात्मनः।

ददर्श कपिशादूर्लस्तस्य रक्षःपतेर्गृहे।।13।।

मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च भागशः।

तत्र न्यस्तानि मांसानि पानिभूमौ ददर्श सः।।14।।

उस महाकाय राक्षसराज के भवन में कपिश्रेष्ठ हनुमान ने वह पानभूमि देखी, जो सम्पूर्ण मनोवान्छित भोगों से सम्पन्न थी। उस मधुशाला में अलग–अलग मुर्गों, भैसों और सुअरों के मांस रखे गये थे, जिन्हें हनुमान जी ने देखा।।13–14।।

रौक्मेषु चं विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।

ददर्श कपिशा दूर्लो मयूरान् कुककुटांस्तथा।।15।।

वराहवाध्रीणसकान् दधिसौक्र्चलायुतान्।

शल्यान् मृग मयुरांश्च हनुमानन्ववैक्षत।।16।।

वानरसिंह हनुमान ने वहां सोने के बड़े–बड़े पात्रों में मोर, मुर्गे, सुअर, गेंडा, साही, हिरण तथा मयूरों के मांस देखे, जो दही और नमक मिलाकर रखे गये थे। वे अभी खाये नहीं गये थे।।15–16।।

कृकलान्विविधांश्चगाञ्छशकानर्धभक्षितान्।

महिषानेकशत्यांश्च मेषांश्च कृतनिष्ठितान्।।17।।

लेहयानुवच्चावचान् पेयान् भोज्यान्युचावेचानि च।

तथाम्ललवणोत्तंसैर्विविधै रागखाण्डवैः।।18।।

कृकल नामक पक्षि भांति–भांति के बकरे, खरगोश आधे खाये हुए भैसे, एकसल्य नामक मत्स्य और भेंड़े ये सब के सब रांध–पकाकर रक्खे हुए थे। इनके साथ अनेक प्रकार की चटनियां भी थीं। भांति–भांति के पेय तथा भक्ष्य पदार्थ भी विद्यमान थे। जीभ की शिथिलता दूर करने के लिए खटाई और नमक के साथ भांति–भांति के राग और खाण्डव भी रक्खे गये थे।।17–18।।

महानूपुर केयूरैपविद्धैर्महाघनैः।

पानभाजनविक्षिप्तैः फलैश्च विविधैरपि।।19।।

कृतपुष्पोपहारा भूरधिकां पुष्यति श्रियम्।

NOTES

बहुमूल्य बड़े–बड़े नूपुर और बाजूबंद जहां–तहां पड़े हुए थे। मद्यपान के पात्र इधर–उधर लुढ़काये हुए थे। भांति भांति के फल भी बिखरे पड़े थे। इन सबसे उपलक्षित होने वाली वह पानभूमि, जिसे फूलों से सजाया गया था, अधिक शोभा का पोषण एवं संवर्धन कर रही थी।

बहुप्रकारैर्विविधैर्वर संस्कारसंस्कृतैः।।21।।

मांसैः कुशलसंयुक्तैः पानभूमिगतैः पृथक्।

दिव्याः प्रसन्नाविविधाः सुराः कृतसुरा अपि।।22।।

शर्करासवमाध्वीकाः पुष्पासवफलासवाः।

वासचूर्णैश्च विविधैर्मृष्टास्तैस्तैः पृथक्–पृथक्।।23।।

अच्छी छौंक–बघार से तैयार किये गये नाना प्रकार के विविध मांस चतुर रसोइयों द्वारा बनाये गये थे और उस पानभूमि में पृथक–पृथक सजाकर रखे गये थे। उनके साथ ही स्वच्छ दिव्य सुराएँ (जो दमम्ब आदि वृक्षों से स्वतः उत्पन्न हुई थीं) और कृत्रिम सुरायें (जिन्हें शराब बनाने वाले लोग तैयार करते हैं) भी वहां रक्खी गई थी। उनमें शर्करासव, माध्वीक, पुष्पासव और फलासैव भी थे। इस सबको नाना प्रकार के सुगन्धित चूर्णों से पृथक–पृथक वासित किया गया था।।21–23।।

संतता शुशुभे भूमिर्माल्यैश्च बहुसंस्थितैः।

हिरण्ययैश्च कलशैर्भाजनैः स्फाटिकैरपि।।24।।

जाम्बूनदमयैश्चान्यैः करकैरभिसंवृता।

वहां अनेक स्थानों पर रखे हुए नाना प्रकार के फूलों, सवर्णमय कलशों, स्फटिकमणि के पात्रों तथा जाम्बूनद के बने हुए अन्यान्य कमण्डलुओं से व्याप्त हुई वह पान भूमि बड़ी शोभा पा रही थी।।24।।

राजतेषु च कुम्भेषु जाम्बूनदमयेषु च।।25।।

पानश्रेष्ठां तथा भूमि कपिस्तत्र ददर्श सः।

चांदी और सोने घड़ें में, जहां श्रेष्ठ पेय पदार्थ रखे थे, उस पान भूमि को कपिवर हनुमान जी ने वहां अच्छी तरह घूम–घूमकर देखा।।25।।

सोऽपश्यच्छातकुम्भानि सीधोर्मणिमयानि च।।26।।

तानि तानि च पूर्णानि भाजनानि महाकपिः।

महाकपि पवन कुमार ने देखा, वहां मदिरा से भरे हुए सोने और मणियों के भिन्न–भिन्न पात्र रखे गये हैं।।26।।

NOTES

क्वचिदर्धावशेषाणि क्वचित् पीतान्यशेषतः।।27।।

क्वचिन्नैव प्रपीतानि पानानि स ददर्श ह।

किसी घड़े में आधी मदिरा शेष थी तो किसी घड़े की सारी की सारी पी ली गयी थी तथा किन्हीं–किन्हीं घड़ों में रक्खे हुए मद्य सर्वथा पीये नहीं गये थे। हनुमान जी ने उन सबको देखा।।27।।

क्वचिद् भक्ष्यांश्च विविधान् क्वचित् पानानि भागशः।।28।।

क्वचिदधविशेषाणि पश्यनि वै विविचार ह।

कहीं नाना प्रकार के भक्ष्य पदार्थ और कहीं पीने की वस्तुऐं अलग–अलग रक्खी गयी थीं और कहीं उनमें से आधी–आधी सामग्री ही बची थी उन सबको देखते हुए वे वहां सर्वत्र विचरने लगे।।28।।

2.3.2 शयनान्यत्र नारीणां शून्यानि बहुधा पुनः।

परस्परं समाश्लिष्य काश्चित् सुप्तावराङ्गनाः।।29।।

उस अन्तःपुर में स्त्रियों की बहुत सी शय्याएँ सूनी पड़ी थीं और कितनी ही सुन्दरियां एक ही जगह एक दूसरी का आलिंगन किये सो रही थीं।।29।।

काचिध वस्त्रमन्यस्या अपहृत्योपगुह्म च।

उपगम्याबला सुप्ता निद्राबलपराजिता।।30।।

निद्रा के बल से पराजित हुई कोई अबला दूसरी स्त्री का वस्त्र उतारकर उसे धारण किये उसके पास जा उसी का आलिंगन करके सो गयी थी।।30।।

तासामुच्छ्वासवातेन वस्त्रं माल्यं च गात्रजम्।

नात्यर्थं स्पन्दते चित्रं प्राप्य मन्दमिवानिलय्।।31।।

उनकी सांस की हवा से उनके शरीर के विविध प्रकार के वस्त्र और पुष्पमाला आदि वस्तुएं उसी तरह धीरे–धीरे हिल रही थीं, जैसे धीमी–धीमी वायु के चलने से हिला करती थीं।।31।।

चन्दनस्य च शीतस्य सीधोर्मधुरसस्य च।

विविधस्य च माल्यस्य पुष्पस्य विविधस्य च।।32।।

बहुधा मारुतस्तस्य गन्धं विविधमुद्वहन्।

NOTES

स्न्नानानां चन्दनानां च धूपानां चैव मूर्च्छितः।।33।।

प्रववौ सुरभिर्गन्धो विमाने पुष्पके तदा।

उस समय पुष्पक विमान में शीतल चन्दन, मद्य, मधुरस, विविध प्रकार की माला, भांति–भांति के पुष्प, स्नान–सामग्री, चन्दन और धूप की अनेक प्रकार की गन्ध का भार वहन करती हुई सुगन्धित वायु सब ओर प्रवाहित हो रही थी।

श्यामावदातास्तत्रान्याः काश्चित् कृष्णा वराङ्गनाः।।34।।

काश्चित् काञ्चनवर्णाङ्गयः प्रमदा राक्षसालये।

उस राक्षसराज के भवन में कोई सांवली, कोई गोरी, कोई काली और कोई सुवर्ण के समान कान्तिवाली सुन्दरी युवतियां सो रही थीं।।34।।

तासां निद्रावशत्वाच मदनेन विमूर्च्छितम्।।35।।

पद्मिनीनां प्रसुप्तानां रूपमासीद् यथैव हि।

निद्रा के वश में होने के कारण उनका काममोहित रूप मुंदे हुए मुखवाले कमलपुष्पों के समान जान पड़ता है।।35।।

एवं सर्वमशेषेण रावणान्तः पुरं कपिः।

ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम्।।36।।

इस प्रकार महातेजस्वी कपिवर हनुमान ने रावण का सारा अन्तःपुर छान डाला तो भी वहां उन्हें जनकनन्दिनी सीता का दर्शन नहीं हुआ।।36।।

2.3.3 निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः।

जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः।।37।।

उन सोती हुई स्त्रियों को देखते–देखते महाकपि हनुमान धर्म के भय से शङ्कित हो उठे। उनके हृदय में बड़ा भारी संदेह उपस्थित हो गया।।37।।

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।

इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति।।38।।

वे सोचने लगे कि इस तरह गाढ़ निद्रा में सोयी हुईं परायी स्त्रियों को देखना अच्छा नहीं है। यह तो मेरे धर्म का अत्यन्त विनाश कर डालेगा।।38।।

न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।

अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः।।39।।

NOTES

मेरी दृष्टि अब तक कभी परायी स्त्रियों का अपहरण करने वाले इस पापी रावण का भी दर्शन हुआ है। (ऐसे पापी को देखना भी धर्म का लोप करने वाला होता है)।।39।।

तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः।

निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी।।40।।

तदनन्तर मनस्वी हनुमान जी के मन में एक–दूसरी विचार धारा उत्पन्न हुई। उनका चित्त अपने लक्ष्य में सुस्थिर था, अतः यह नयी विचारधारा उन्हें अपने कर्तव्य का ही निश्चय कराने वाली थी।।40।।

कामं दृष्य मया सर्वा विखस्तथा रावणस्त्रियः।

न तुमे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते।।41।।

(वे सोने लगे) 'इसमें संदेह नहीं कि रावण की स्त्रियां निःशंक सो रही थीं और उसी अवस्था में मैंने सबको अच्छी तरह देखा है, तथापि मेरे मन में कोई विकास नहीं उत्पन्न हुआ है।।41।।

मनो हि हेतुः सर्वेषाभिन्द्रियाणां प्रवर्तने।

शुभाशुभास्ववस्थासु तच में सुव्यवस्थितम्।।42।।

सम्पूर्ण इन्द्रियों को शुभ और अशुभ अवस्थाओं में लगने की प्रेरणा देने में मन ही कारण है, किंतु मेरा वह मन पूर्णतः स्थिर है (उसका कहीं राग या द्वेष नहीं है, इसलिये मेरा यह पर स्त्री दर्शन धर्म का लोप करने वाला नहीं हो सकता)।।42।।

नान्यत्र ही मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम।

स्त्रियों ही स्त्रीषु दुश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे।।43।।

विदेह नन्दिनी सीता को दूसरी जगह मैं ढूंढ़ भी तो नहीं सकता था, क्योंकि स्त्रियों को ढूंढ़ते समय उन्हें स्त्रियों के बीच में ही देखा जाता है।।43।।

यस्यसत्वस्य या योनिस्तस्यां तत् परमार्गते।

न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम्।।44।।

जिस जीव की जो जाति होती है, उसी में उसे खोजा जाता है। खोयी हुई युवती स्त्री को हरिनियों के बीच में नहीं ढूँढ़ा जा सकता है।।44।।

NOTES

तदिदं मार्तिं तावच्छद्धेन मनसा मया।

रावणान्तः पुरं सर्व दृश्यते न च जानकी।।45।।

अतः मैंने रावण के इस सारे अन्तःपुर में शुद्ध हृदय से ही अन्वेषण किया है किन्तु यहां जानकी जी नहीं दिखाई देती है।।45।।

देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च वीर्यवान्।

अवेक्षमाणो हनुमान् नैवापश्यत जानकीम्।।46।।

अन्तः पुर का निरीक्षण करते हुए पराक्रमी हनुमान ने देवताओं और गन्धर्वों व नागों की कन्याओं का वहां देखा, किन्तु जनकनन्दिनी सीता को नहीं देखा।।46।।

तामपश्यन् कपिस्तत्र पश्यश्चान्या वरस्त्रियः।

आपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे।।47।।

दूसरी सुन्दरियों को देखते हुए वीर वानर हनुमान् ने जब वहां सीता को नहीं देखा तब वे वहां से हटकर अन्यत्र जाने को उद्यत हुए।।47।।

स भूयः सर्वतः श्रीमान् मारूतिर्यत्रमाश्रितः।

आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमें।।48।।

फिर तो श्रीमान् पवनकुमार ने उस पानभूमि को छोड़कर अन्य सब स्थानों में उन्हें बड़े यत्र का आश्रय लेकर खोजना आरम्भ किया।।48।।

2.3.4 द्वादशः सर्गः

सीता के मरण की आशंका से हनुमान जी का शिथिल होना, फिर उत्साह का आश्रय लेकर अन्य स्थानों में उनकी खोज करना और कहीं भी पता न लगने से पुनः उनका चिन्तित होना।

NOTES

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो

लतागृहांश्चित्रगृहान् निशागृहान्।

जगाम सीतां प्रतिदर्शनोत्सुको

न चैव तां पश्यति चारुदर्शनाम्।।1।।

उस राजभवन के भीतर स्थित हुए हनुमान् जी सीताजी के दर्शन के लिए उत्सुक हो क्रमशः लता–मण्डपों में, चित्र–शालाओं में तथा रात्रिकालिक विश्राम गृहों में गये, परन्तु वहां भी उन्हें परम सुन्दरी सीता का दर्शन नहीं हुआ।।1।।

स चित्तयामास ततो महाकपिः

प्रियामपश्यन् रघुनन्दनस्य ताम्।

ध्रुवं न सीता ध्रियते यथा न में

विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली।।2।।

रघुनन्दन श्रीराम की प्रियतमा सीता जब वहां भी दिखाई न दीं, तब वे महाकपि हनुमान इस प्रकार चिन्ता करने लगे– 'निश्चय ही अब मिथिलेश कुमारी सीता जीवित नहीं है। इसीलिए बहुत खोजने पर भी वे मेरे दृष्टि पथ में नहीं आ रही हैं।।2।।

सा राक्षसानां प्रवरेण जानकी

स्वशीलसंरक्षणतत्परा सती।

अनेन नूनं प्रति दुष्टकर्मणा

हता भवेदार्यपथे परे स्थिता।।3।।

सती–साध्वी सीता उत्तम आर्यमार्ग पर स्थित रहने वाली थीं। वे अपने शील और सदाचार की रक्षा में तत्पर रही हैं, इसलिये निश्चय ही इस दुराचारी राक्षसराज ने उन्हें मार डाला होगा।।3।।

विरूपरूपा विकृता विवर्चसो

महानना दीर्घविरूपदर्शनाः।

समीक्ष्य ता राक्षसराजयोषितो

भयाद् विनष्टा जनकेश्वरात्मजा।।4।।

NOTES

राक्षसराज रावण के यहां जो दास्यकर्म करने वाली राक्षसियां हैं, उनके रूप बड़े बेडौल हैं। वे बड़ी विकट और विकराल हैं। उनकी कान्ति भी भयंकर है। उनके मुंह विशाल और आंखें भी बड़ी–बड़ी एवं भयानक हैं। उन सबको देखकर जनकराजनन्दिनी ने भय के मारे प्राण त्याग दिये होंगे।।4।।

सीतामदृष्ट्वा ह्यनवाप्य पौरूषं

विहृत्य कालं सह वानरैश्चिरम्।

न मेऽस्ति सुग्रीव समीपगा गतिः

सुतीक्ष्णदण्डो बलवांश्च वानरः।।5।।

सीता का दर्शन न होने से मुझे अपने पुरूषार्थ का फल नहीं प्राप्त हो सका। इधर वानरों के साथ सुदीर्घकालतक इधर उधर भ्रमण करके मैंने लौटने की अवधि भी बिता दी है, अतः अब मेरा सुग्रीव के पास जाने का भी मार्ग बंद हो गया, क्योंकि वह वानर बड़ा बलवान् और अत्यन्त कठोर दण्ड देने वाला है।।5।।

दृष्टमन्तपुरं सर्वे दृष्टा रावणयोषितः।

न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः।।6।।

'मैने रावण का सारा अन्तःपुर छान डाला, एक–एक करके रावण की समस्त स्त्रियों को भी देख लिया, किन्तु अभी तक साध्वी सीता का दर्शन नहीं हुआ, अतः मेरा समुद्र लंघन का सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया।

किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति संगताः।

गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद् वदस्व नः।।7।।

'जब मैं लौटकर जाऊँगा, तब सारे वानर मिलकर मुझसे क्या कहेंगे, वे पूछेंगे, वीर ! वहां जाकर तुमने क्या किया है– यह मुझे बताओ।

अदृष्टा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्यजाम्।

ध्रुवं प्रायमुपासिन्ये कालस्य व्यातवर्तने।।8।।

'किन्तु जनकनन्दिनी सीता को न देखकर मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगा। सुग्रीव के निश्चित किये हुये समय का उल्लंघन कर देने पर अब मैं निश्चय ही आमरण उपवास करूंगा

किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः।

गतं पारं समुद्रस्य वामराश्च समागताः।।

'बड़े–बूढ़े जाम्बवान् और युवराज अंगद मुझसे क्या कहेंगे ? समुद्र के पार जाने पर अन्य वानर भी जब मुझसे मिलेंगे, तब वे क्या कहेंगे ?

2.3.5

अग्निर्वेदः श्रियो मूलयनिर्वेदः परं सुखम्।

भूयस्तन विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः।।10।।

(इस प्रकार थोड़ी देर तक हताश से होकर वे फिर सोचने लगे–) 'हताश न होकर उत्साह को बनाये रखना हो सम्पत्ति का मूल कारण है। उत्साह ही परम सुख का हेतु है, अतः मैं पुनः उन स्थान में सीताजी की खोज करूंगा, जहां अब तक अनुसंधान नहीं किया गया था।

अग्निर्वेदो हि सततं सर्वार्येषु प्रवर्तकः।

करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः।।11।।

'उत्साह ही प्राणियों को सर्वदा सब प्रकार के कार्यो में प्रवृत्त करता है और वही उन्हें वे जो कुछ करते हैं उस कार्य में सफलता प्रदान करता है।

तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं चेष्टेऽध्मुत्तमम्।

अदृष्टांक्ष विचेष्यामि देशान् रावण पालितान्।।12।।

'इसलिये अब मैं और भी उत्तम एवं उत्साहपूर्वक प्रयत्न के लिये चेष्टा करूंगा। रावण के द्वारा सुरक्षित जिन स्थानों को अब तक नहीं देखा था, उनमें भी पता लगाऊँगा।

आपानशाला विचितास्तथा पुष्पग्रहाणि च।

चित्रशालाश्च विचिता भूयः क्रीडा ग्रहाणि च।।13।।

निष्कुटान्तररथ्याश्च विमानानि च सर्वशः।

इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे।।14।।

NOTES

आपानशाला, पुष्पग्रह, चित्रशाला, क्रीड़ाग्रह, ग्रहोद्यान की गलियां और पुष्पक आदि विमान–इन सबका तो मैंने चप्पा चप्पा देख डाला (अब अन्यत्र खोज करूंगा)' यह सोचकर उन्होंने पुनः खोजना आरम्भ किया।

NOTES

भूमी गृहांश्चैत्यगृहान् गृहाति गृह कानपि।

उत्पतन् निपतंश्चापि तिष्ठन् गच्छन पुनः कचित्।।15।।

वे भूमि के भीतर बने हुये घरों (तहरवानों) में, चौराहों पर बने हुये मण्डपों में तथा घरों को लांघकर उनसे थोड़ी ही दूर पर बने हुये विलास भवनों में सीता की खोज करने लगे। वे किसी घर के ऊपर चढ़ जाते, किसी से नीचे कूद पड़ते, कहीं ठहर जाते और किसी को चलते–चलते ही देख लेते थे।

अपवृण्वंक्ष द्वाराणि कपाटान्यवछट्टयन्।

प्रविशन् निष्पतंश्चापि प्रपतन्नुत्पतन्निव।।16।।

घरों के दरवाजों को खोल देते, कहीं किवाड़े भिड़का देते, किसी के भीतर घुसकर देखते और फिर निकल आते थे। वे गिरते–पड़ते और उछलते हुये से सर्वत्र खोज करने लगे।

सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः।

चतुरङ्गलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते।

रावणान्तःपुरेतस्मिन् यं कपिर्न जगाय सः।।17।।

उन महाकपि ने हवां के सभी स्थानों में विचरण किया। रावण के अन्तःपुर में कोई चार अंगुल का भी ऐसा स्थान नहीं रह गया, जहां कविर हनुमान जी न पहुंचे हों।

प्रकारान्तरवीथ्यश्च वेदिकाक्षैत्यसंश्रयाः।

श्वभ्रश्च पुष्करिण्यश्च सर्वे तेनावलोकितम्।।18।।

उन्होंने परकोटे के भीतर की गलियां, चौराहे के वृक्षों के नीचे बनी हुई वेदियां, गड्ढे और पोखरियां– सबको छान डाला।

राक्षस्यो विविधाकारा विरूपा विकृतास्तथा

दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा।।19।।

हनुमान जी ने जगह–जगह नाना प्रकार के आकार वाली, कुरूप और विकट राक्षसियां देखीं, किन्तु वहां उन्हें जानकी जी का दर्शन नहीं हुआ।

रूपेणाप्रतिमा लोक परा विद्याधरस्त्रियः

दुष्टा हनुमता तत्र न तु राघवनन्दिनी ।।20।।

संसार में जिनके रूप–सौन्दर्य की कहीं तुलना नहीं थी ऐसी बहुत सी विद्याधारियां भी हनुमान जी की दृष्टि में आयीं, परन्तु वहां उन्हें रघुनाथ जी को आनन्द प्रदान करने वाली सीता नहीं दिखाई दी।

NOTES

नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्र निभानभाः।

दृष्टा हनुमता तत्र न तु सा जनकात्मजा।।21।।

हनुमान जी ने सुन्दर नितम्ब और पूर्ण चन्द्रमा के समान मनोहर मुखवाली बहुत सी नागकन्याएं भी वहां देखीं, किंतु जनककिशोरी का उन्हें दर्शन नहीं हुआ।

प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धताः।

दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी।।22।।

राक्षसराज के द्वारा नागसेना को मथकर बलात्कार से हरकर लायी हुई नागकन्याओं को तो पवनकुमार ने वहां देखा, किन्तु जानकी जी उन्हें दृष्टिगोचर नहीं हुई।

2.3.6

सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंक्षान्या वरस्त्रियः।

विषसाद महाबाबाहुर्हनूमान् मारुतात्मजः।।23।।

महाबाहु पवन कुमार हनुमान को दूसरी बहुत सी सुन्दरियां दिखाई दीं, परन्तु सीता जी उनके देखने में नहीं आयीं। इसलिये वे बहुत दुखी हो गये।

उद्योगं वानरेन्द्राणां पल्लवनं सागरस्य च।

व्यर्थे वीक्ष्या निलसुतश्चिन्तां पुनरूपागतः।।24।।

उन वानर शिरोमणि वीरों के उद्योग और अपने द्वारा किये गये समुद्रलंघन को व्यर्थ हुआ देखकर पवनपुत्र हनुमान वहां पुनः बड़ी भारी चिन्ता में पड़ गये।

अवतीर्य विमानाच्च हनूमान मारूतात्मजः।

चिन्तामुपजगामाथ शोकोपहतचेतनः।।25।।

उस समय वायुनन्दन हनुमान विमान से नीचे उतर आये और बड़ी चिन्ता करने लगे। शोक से उनकी चेतना शक्ति शिथिल हो गयी।

सूची प्रश्न :

NOTES

निम्नांकित श्लोकों में से किन्हीं दो की ससंदर्भ व्याख्या कीजिए।

प्र.1. अवधूय ..... महाकपिः।।

प्र.2. नान्यं ..... त्रिदशेष्वपि।।

प्र.3. एवं ..... च जानकीम्।।

प्र.4. राक्षस्यो ..... जनकात्मजा।।

प्रदत्त कार्य :

रावण की मधुशाला में सीताजी को न पाने पर हनुमान जी के अन्तर्द्वन्द्व का भा वचित्रण करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

रामायण – महर्षि बाल्मीकि कृत, गीताप्रेस गोरखपुर

साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय

इकाई–चतुर्थ

NOTES

भूमिका

उद्देश्य

2.4.1 श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म के गुण प्रभाव का सविस्तार वर्णन।

2.4.2 भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति तथा भीष्म की प्रशंसा करते हुए उन्हें युधिष्ठिर के लिए धर्मोपदेश करने का आदेश।

2.4.3 भीष्म की अपनी असमर्थता प्रकट करना, भगवान का उन्हें वर देना तथा ऋषियों एवं पाण्डवों का दूसरे दिन आने का संकेत करके वहां से विदा होकर अपने–अपने स्थानों को जाना।

2.4.4 भगवान श्रीकृष्ण की प्रातश्चर्या, सात्यकि द्वारा उनका संदेश पाकर भाइयों सहित युधिष्ठर का उन्हीं के साथ कुरूक्षेत्र में पधारना।

2.4.5 भगवान श्रीकृष्ण और भीष्म की बातचीत।

सूची प्रश्न

प्रदत्त कार्य

सन्दर्भ ग्रन्थ

इकाई–चतुर्थ

NOTES

भूमिका :

महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रणीत महाभारत प्राचीन संस्कृत इतिहास काव्य की अनुपम धरोहर है। ग्रन्थ रत्न में कौरव पाण्डव युद्ध के माध्यम महर्षि वेद व्यास ने न केवल तत्कालीन राजनीतिक धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का ही मनोहरी काव्यात्मक चित्रण किया है बल्कि धर्मराज युधिष्ठिर, गंगापुत्र भीष्म, योगेश्वर कृष्ण आदि के चरित्र एवं उनके पारस्परिक संवादों के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जाति को पितृधर्म, शिष्यधर्म, मातृधर्म तथा राजधर्म की अनुपम शिक्षा प्रदान की है।

महर्षि वेदव्यास द्वारा निर्दिष्ट धर्माचरण के विविध अंग आज भी मानव जाति के लिये अनुकरणीय एवं कल्याणप्रद हैं।

उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य पाठकों को महाभारत के शान्तिपर्व के अन्तर्गत वर्णितज कृष्ण भीष्म संवाद के तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई को पढ़कर आप कृष्ण द्वारा शरशैया पर लेटे हुये भीष्म के गुणानुवाद एवं स्वयं भीष्म द्वारा कृष्ण की गयी स्तुति के दृश्यों एवं उनके अन्तर्भावों से परिचित हो सकेंगे।

2.4.1

NOTES

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः (50वाँ अध्याय)

श्री कृष्ण द्वारा भीष्म के गुण प्रभाव का सविस्तार वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ततो रामस्य तत् कर्मश्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः।

विस्मयंपरमं गत्वा प्रत्युवाच जनार्दनम्।।1।।

वैशम्पासन जी कहते हैं– राजन ! परशुराम जी का वह अलौकिक कर्म सुनकर राजा युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे भगवान् श्री कृष्ण से बोले।

अहो रामस्य वार्ष्णेय शक्रस्येव महात्मनः।

विक्रमो वसुधा येन क्रोधान्निः क्षत्रिया कृता।।2।।

'वृष्णिनन्दन ! महात्मा परशुराम का पराक्रम तो इन्द्र के समान अत्यन्त अद्भुत है, जिन्होंने क्रोध करके यह सारी पृथ्वी क्षत्रियों से सूनी कर दी।

गोभिः समुद्रेण तथा गोलाङ्गूलक्षैवानरैः।

गुप्ता रामभयोद्विज्जाः क्षत्रियाणां कुलोद्वहाः।।3।।

'क्षत्रियों के कुल का भार वहन करने वाले श्रेष्ठ पुरूष परशुराम जी के भय से अद्विग्न हो छिपे हुये थे और गाय, समुद्र लंगूर, रीछ तथा वानरों द्वारा उनकी रक्षा हुई थी।

अहो धन्यो नृलोकोऽयं सभाज्याश्च नरा भुवि।

यत्र कर्मेदृशं धर्म्य द्विजेन कृतमित्युत।।4।।

'अहो ! यह मनुष्य लोक धन्य है और इस भूतल के मनुष्य बड़े भाग्यवान हैं, जहां द्विजवर परशुराम जी ने ऐसा धर्मसंगत कार्य किया।

तथा वृत्तौ कथां तात तावच्युतयुधिष्ठिरौ।

जग्मतुर्यत्र गाङ्गेय शरतल्पगतः प्रभुः।।5।।

तात ! युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण इस प्रकार बातचीत करते हुये उस स्थान पर जा पहुंचे, जहां प्रभावशाली गंगानन्दन भीष्म बाणशय्या पर सोये हुये थे।

ततस्ते ददृशुर्भीष्यं शरप्रस्तरशायिनम्।

स्वरश्मिजालसंवीतं सायंसूर्यसमप्रभम्।।6।।

उन्होंने देखा कि भीष्म जी शरशैया पर सो रहे हैं और अपनी किरणों से घिरे हुए सायंकालिक सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं।

NOTES

उपास्यमानं मुनिभिर्देवैरिव शतक्रतुम्।

देशे परमधर्मिष्ठे नदीमोघवतीमनु।।7।।

जैसे देवता इन्द्र की उपासना करते हैं, उसी प्रकार बहुत से महर्षि ओघवती नदी के तट पर परम धर्ममय स्थान में उनके पास बैठे हुए थे।

दूरादेव तमालोक्य कृष्णो राजा च धर्मज्ञः।

चत्वारः पाण्डवाश्चैव ते च शारद्वतादयः।।8।।

अवस्कन्द्याथ वाहेभ्यः संयम्य प्रचलं मनः।

एकीकृत्येन्द्रियग्राममुपतस्थुर्महामुनीन्।।9।।

श्रीकृष्ण, धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, अन्य चारों पाण्डव तथा कृपाचार्य आदि सब लोग दूर से ही उन्हें देखकर अपने–अपने रथ से उतर गये और चंचल मन को काबू में करके सम्पूर्ण इन्द्रियों का एकाग्र कर वहां बैठे हुये महामुनियों की सेवा में उपस्थित हुये।

अभिवाद्य तु गोविन्दः सात्यकिस्ते च पार्थिवाः।

व्यासादीनृषिमुख्यांश्व गाङ्गेयमुपतस्थिरे।।10।।

श्रीकृष्ण, सात्यविक तथा अन्य राजाओं ने व्यास आदि महर्षियों को प्रणाम करके गंगानन्दन भीष्म को मस्तक झुकाया।

ततो वृद्धं तथा दृष्ट्वा गाङ्गेयं यदुकौरवाः।

परिवार्य ततः सर्वे निषेदुः पुरुषर्षभान्ना।।11।।

तदनन्तर वे सभी यदुवंशी और कौरव नरश्रेष्ठ बृद्ध गंगानन्दन भीष्म जी का दर्शन करके उन्हें चारों ओर से घेर कर बैठ गये।

ततो निशाम्य गाङ्गेयं शाम्यमाननिवानलम्।

किंचिद् दीनमना भीष्ममिति होवाच केशवः।।12।।

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने मन ही मन कुछ दुखी हो बुझती हुई आग के समान दिखाई देने वाले गंगानन्दन भीष्म को सुनाकर इस प्रकार कहा–।

कच्चिज्ज्ञानानि सवाणि प्रसन्नानि यथा पुरा।

कञ्चिन व्याकुला चैव बुद्धिस्ते वदतां वर।।13।।

'वक्ताओं में श्रेष्ठ भीष्म जी ! क्या आपकी सारी ज्ञानेन्द्रियां पहले की ही भांति प्रसन्न हैं ? आपकी बुद्धि व्याकुल तो नहीं हुई है।

NOTES

शराभिघ्यातदुःखात् ते कञ्चिद् गात्रं न दूयते।

मानसादपि दुःखाद्धि शारीरं बलवन्तरम्।।14।।

आपको वाणों की चोट सहने का जो कष्ट उठाना पड़ा है उससे आपके शरीर में विशेष पीड़ा तो नहीं हो रही है ? क्योंकि मानसिक दुःख से शाररिक दुःख अधिक प्रबल होता है– उसे सहना कठिन हो जाता है।

वरदानात् पितुः कामं छन्दमृत्युरसि प्रभो।

शान्तनोर्धर्म नित्यस्य न त्वेतन्यम कारणम्।।15।।

'प्रभो आपने निरन्तर धर्म में तत्पर रहने वाले पिता शान्तनु के वरदान से मृत्यु को अपने अधीन कर लिया है। जब आपकी इच्छा हो तभी मृत्यु हो सकती है अन्यथा नहीं। यह आपके पिता के वरदान का ही प्रभाव है, मेरा नहीं।

सुसूक्ष्मोऽपि तु देहे वै शल्यो जनयते रूजम्।

किं पुनः शरसंघातैश्चितस्य तव पार्थिव।।16।।

'राजन ! यदि शरीर में कोई महीन से महीन कांटा गड़ जाय तो वह भारी वेदना पैदा करता है। फिर जो वाणों के समूह से चुन दिया गया है, उस आपके शरीर की पीड़ा के बारे में तो कहना ही क्या ?

काममम् नैतत् तवाख्मेयं प्राणिनां प्रभवारप्ययौ।

उपदेष्टुं भवाञ्शक्तो देवानामपि भारत।।17।।

'भरतनन्दन ! अवश्य ही आपके सामने यह कहना उचित न होगा कि 'सभी प्राणियों के जन्म और मरण प्रारब्ध के अनुसार नियत हैं। अतः आपको दैव का विधान समझकर अपने मन में कोई दुःख नहीं मानना चाहिये।' आपको कोई क्या उपदेश देगा ? आप तो देवताओं को उपदेश देने में समर्थ हैं।

यच्च भूतं भविष्सं च भवच पुरुर्षभ।

सर्वे तज्ज्ञानवृद्धस्य तव भीष्म प्रतिष्ठितम्।।18।।

पुरुष प्रवर भीष्म ! आप ज्ञान में सबसे बड़े–चढ़े हैं आपकी बुद्धि में भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ प्रतिष्ठित हैं।

NOTES

संहारक्षैव भूतानां धर्मस्य च फलोदयः।

विदितस्ते महाप्रज्ञ त्वं हि धर्ममयो निधिः।।19।।

'महामते प्राणिसों का संहार कब होता है ? ये सारी बातें आपको ज्ञात हैं, क्योंकि आप धर्म के प्रचुर भण्डार हैं।

त्वां हि राज्ये स्थितं स्फीते समग्राङ्गमरोगिणम्।

स्त्री सहस्रैः परिवृतं पश्यानीवोर्ध्वरेतसम्।।20।।

आप एक समृद्धशाली राज्य के अधिकारी थे, आपके सम्पूर्ण अंग ठीक थे, किसी अंग में कोई न्यूनता नहीं थी, आपको कोई रोग भी नहीं था, और आप हजारों स्त्रियों के बीच में रहते थे, तो भी मैं आपको ऊर्ध्वरेता (अखण्ड ब्रम्हचर्य से सम्पन्न) ही देखता हूँ।

ऋते शान्तनवाद् त्रिषु लोकेषु पार्थिव।

सत्यधर्मान्महावीर्याच्छूराद् धर्मैकतत्परात्।।21।।

मृत्युभावार्थ तपसा शरसंस्तर शायिनः।

निसर्गप्रभवं किंचिन्न च तातानुशुश्रुम।।22।।

'तात ! पृथ्वीनाथ ! मैंने तीनों लोकों में सत्यवादी, एक मात्र धर्म में तत्पर, शूरवीर, महापराक्रमी तथा वाणशय्या पर शयन करने वाले आप शान्तुनन्दन भीष्म के सिवा दूसरे किसी ऐसे प्राणी को ऐसा नहीं सुना है, जिसने शरीर के लिये स्वभाव सिद्ध मृत्यु को अपनी तपस्या से रोक दिया हो।

सत्ये तपसिदाने च यज्ञाधिकरणे तथा।

धनुर्वेदे च वेदे च नीत्यां चैवानुरक्षणे।।23।।

अनृशंस शुचिं दान्तं सर्वभूर्ताध्ते रतम्।

महारथं त्वतसदृशं न कंदितनुशुश्रुम।।24।।

सत्य, तप, दान और यज्ञ के अनुष्ठान में वेद, धनुर्वेद तथा नीतिशास्त्र के ज्ञान में, प्रजा के पालन में, कोमलतापूर्ण बर्ताव, बाहर–भीतर की शुद्धि मन और इन्द्रियों का संयम तथा सम्पूर्ण प्राणियों के हित साधन में आपके समान मैंने दूसरे किसी महारथी को नहीं सुना है।

त्वं हि देवान् सगन्धर्वानसुरान् यक्षराक्षसान्।

श्क्तस्त्वेकरथेनैव विणेतुं नात्र संशयः।।25।।

आप सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष और राक्षसों को एक मात्र रथ के द्वारा ही जीत सकते थे, इसमें संशय नहीं है।

NOTES

स त्वं भीष्म महाबाहो बसूनां वासवोपमः।

नित्यं विप्रैः समाख्यातो नवमोऽनवमो गुणैः।।26।।

'महाबाहो भीष्म ! आप पसुओं में वासव (इन्द्र) के समान हैं। ब्राम्हणों ने सदा आपको आठ वसुओं के अंश से उत्पन्न नवां वसु बताया है। आपके समान गुणों में कोई नहीं है।

अहं च त्वाभिजानामि यस्त्वं पुरूषसत्तमः।

त्रिदरोष्वपि विख्यातस्त्वं शक्त्या पुरूषोत्तमः।।27।।

पुरुष प्रवर ! आप कैसे हैं और क्या हैं, यह मैं जानता हूं। आप पुरूषों में उत्तम और अपनी शक्ति के लिये देवताओं में भी विख्यात हैं।

मनुष्येषु मनुष्येन्द्र न दृष्टो न च मे श्रुतः।

भवतो वा गुवैर्युक्तः पृथिव्यां पुरूषः कन्चित्।।28।।

'नरेन्द्र ! मनुष्यों में आपके समान गुणों से युक्त पुरूष इस पृथ्वी पर न तो मैंने कहीं देखा है और न सुना ही है।

त्वं हि सर्वगुणै राजन् देवानप्यतिरिच्यसे।

तपसा हि भवाञ्शक्तः स्रष्टुं लोकांश्चराचरान्।।29।।

'राजन आप अपने सम्पूर्ण गुणों के द्वारा तो देवताओं से भी बढ़कर हैं तथा तपस्या के द्वारा चराचर लोकों की भी सृष्टि कर सकते हैं।

किं पुनश्चात्मनो लोकानुत्तमानुत्तमैर्गुणैः।

तदस्य तव्यमानस्य ज्ञातीनां संक्षयेन वै।।30।।

ज्येष्ठस्य पाण्डुपुत्रस्य शोकं भीष्म व्यपानुद।

'फिर अपने लिये उत्तम गुण सम्पन्न लोकों की सृष्टि करना आपके लिये कौन बड़ी बात है ? अतः भीष्म ! आपसे यह निवेदन है कि ये ज्येष्ठ पाण्डव अपने कुटुम्बीजनों के वध से बहुत संतप्त हो रहे हैं। आप इनका शोक दूर करें।

ये हि धर्माः समाख्याताक्षातुर्वर्ण्यस्य भारत।।31।।

चातुराश्रमम्यसंयुक्ताः सर्वे ते विदितास्तव।

चातुर्विद्ये च ये प्रोक्ताश्चतुर्होत्रे च भारत।।32।।

NOTES

'भारत ! शास्त्रों में चारों वर्णों और आश्रमों के लिये जो धर्म बताये गये हैं, वे भी आपको ज्ञात हैं।

योगे सांख्ये च नियता ये च धर्माः सनातनाः।

चातुर्वर्णस्य यश्चोक्तो धर्मो न स्म विरूध्यते।।33।।

सेव्यमानः सवैयाख्यो गाङ्गेय विदितस्तव।

'गंगानन्दन ! योग और सांख्य में जो सनातन धर्म नियत हैं तथा चारों वर्णों के लिये जो अविरोधी धर्म बताया गया है, जिसका सभी लोग सेवन करते हैं, वह सब आपको व्याख्या सहित ज्ञात है।

प्रतिलोम प्रसूतानां वर्णानां चैव यः स्मृतः।।34।।

देशजातिकुलानां न जानीषे धर्मलक्षणम्।

वेदोक्तो यश्च शिष्ठोक्तः सदैव विदितस्तव।।35।।

'विलोम क्रम से उत्पन्न हुये वर्णशंकरों का जो धर्म है उससे भी आप अपरिचित नहीं है। देश जाति और कुल के धर्मों का क्या लक्षण है उसे आप अच्छी तरह जानते हैं। वेदों में प्रतिपादित तथा शिष्ट पुरूषों द्वारा कथित धर्मों को भी आप सदा से ही जानते हैं।

इतिहासपुराणार्थाः कात्स्न्र्येन विदितास्तव।

धर्मशास्त्रं च सकलं नित्यं मनसि ते स्थितम्।।36।।

'इतिहास और पुराणों के अर्थ आपको पूर्णरूप से ज्ञात हैं। सारा धर्मशास्त्र सदा आपके मन में स्थित है।

ये च केचन लोकेऽस्मिन्नर्थाः संशयकारकाः।

तेषां देत्ता नास्ति लोके त्वदन्यः पुरूषर्षभ।।37।।

'पुरूष प्रवर ! संसार में जो कोई संदेहग्रस्त विषय है, उनका समाधान करने वाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है।

स पाण्डवेयस्य मनःसमुत्थितं

नरेन्द्र शोकं व्यपकर्ष मेधया।

भवद्विधा ह्यत्तमबुद्धि विस्तरा

विमुह्यमानस्य नरस्य शान्तयसे।।38।।

NOTES

'नरेन्द्र ! पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर के हृदय में जो शोक उमड़ आया है, उसे आप अपनी बुद्धि के द्वारा दूर कीजिये। आप–जैसे उत्तम बुद्धि के विस्तार वाले पुरूष ही मोहग्रस्त मनुष्य के शोक–संताप को दूर करके उसे शान्ति दे सकते हैं।

50वाँ अध्याय समाप्त।

NOTES

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः (51वां अध्याय)

भीष्म के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति तथा श्रीकृष्ण का भीष्म की प्रशंसा करते हुये उन्हें युधिष्ठिर के लिये धर्मोपदेश करने का आदेश

वैशम्पायन उवाच :

श्रुत्वा तु वचनं भीष्मो वासुदेवस्य धीमतः।

किंचिदुन्नाम्य वदनं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्।।1।।

वैशम्पायन जी कहते हैं– राजन ! परम बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण का वचन सुनकर भीष्म जी ने अपना मुंह कुछ ऊपर उठाया और हाथ जोड़कर कहा।

भीष्म उवाच :

नमस्ते भगवन् श्रीकृष्ण लोकानां प्रभवाव्यय।

त्वं हि कर्ता हृषीकेष संहर्ता चापराजितः।।2।।

भीष्म जी बोले– सम्पूर्ण लोकों की उत्पत्ति और प्रलय के अधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है। हृषीकेश ! आप ही इस जगत् की सृष्टि और संहार करने वाले हैं। आपकी कभी पराजय नहीं होती।

विश्वकर्मन नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन् विश्वसम्भव।

अपवर्गोऽसि भूतानां पञ्चानां परतः स्थितः।।3।।

इस विश्व की रचना करने वाले परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। विश्व के आत्मा और विश्व की उत्पत्ति के स्थानभूत जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है। आप पांचो भूतों से परे और सम्पूर्ण प्राणियों के लिये मोक्षस्वरूप हैं।

नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु।

योगेश्वर नमस्तेऽस्तु त्वं हि सर्वपरायणः।।4।।

तीनों लोकों में व्याप्त हुये आपको नमस्कार है। तीनों गुणों से अतीत आपको प्रणाम है। योगेश्वर! आपको नमस्कार है। आप ही सबके परम आधार हैं।

मत्संश्रितं यदाऽऽत्थ त्वं वचः पुरूषसत्तम।

तेन पश्यामि ते दिव्यान् आवान् हि त्रिषुवर्त्यसु।।5।।

पुरूष प्रवर ! आपने मेरे सम्बन्ध में जो बात कही है, उससे मैं तीनों लोकों में व्याप्त हुये आपके दिव्य भावों का साक्षात्कार कर रहा हूं।

तच्च पश्यामि गोविन्द यत् ते रूपं सनातनम्।

सप्त मार्गा निरूद्धास्ते वायोरभिततेजसः।।6।।

NOTES

गोविन्द ! आपका जो सनातन रूप है, उसे भी मैं देख रहा हूं। आपने ही अत्यन्त तेजस्वी वायु का रूप धारण करके ऊपर के सातों लोकों को व्याप्त कर रक्खा है।

दिवं ते शिरसा व्याप्तं पद्भ्यां देवी वसुन्धरा।

दिशो भुजा रविश्चक्षुर्वीर्ये शुक्रः प्रतिष्ठितः।।7।।

स्वर्गलोक आपके मस्तक से और वसुन्धरा देवी आपके पैरा से व्याप्त हैं। दिशायें आपकी भुजाएं हैं। सूर्य नेत्र हैं और शुक्राचार्य आपके वीर्य में प्रतिष्ठित हैं।

अतसीपुष्प संकाशं पीतवाससमच्युतम्।

वपुर्हर्ननुमिमीमस्ते मेद्यस्येव सविद्युतः।।8।।

आपका श्रीविग्रह तीसी के फूल की भांति श्याम है। उस पर पीताम्बर शोभा दे रहा है, वह कभी अपनी महिमा से च्युत नहीं होता। उसे देखकर हम अनुमान करते हैं कि बिजली सहित मेघ शोभा पा रहा है।

त्वतप्रपन्नाय भक्ताय गतिमिष्टां जिगीषवे।

यच्छ्रेयः पुण्डरीकाक्ष तद् ध्यायस्व सुरोत्तम।।9।।

मैं आपकी शरण में आया हुआ आपका भक्त हूं और अभीष्ट गति को प्राप्त करना चाहता हूं। कमलनयन। सुरश्रेष्ठ ! मेरे लिये जो श्रेष्ठ कल्याणकारी उपाय हो उसी का संकल्प कीजिये।

वासुदेव उवाच :

यतः खलु परः भक्तिर्मयि ते पुरूषर्षभ।

ततो मया वपुर्दिव्यं त्वयि राजन् प्रदर्शितम्।।10।।

श्रीकृष्ण बोले– राजन ! पुरूष प्रवर ! मुझमें आपकी पराभक्ति है। इसीलिये मैंने आपको अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराया है।।10।।

न ह्यभक्ताय राजेन्द्र भक्तायानृजवे न च।

दर्शयाम्यहमात्मानं न चाशान्तान्ताय भारत।।11।।

भारत ! राजेन्द्र ! जो मेरा भक्त नहीं है अथवा भक्त होने पर भी सरल स्वभाव का नहीं है। जिसके मन में शान्ति नहीं है, उसे मैं अपने स्वरूप का दर्शन नहीं कराता।

NOTES

भवांस्तु मम भक्तश्च नित्यं चार्जवमास्थितः।

दमे तपसि सत्ये च दाने च निरतः शुचिः।।12।।

आप मेरे भक्त तो हैं ही। आपका स्वभाव भी सरल है। आप इन्द्रिय–संयम, तपस्या, सत्य और दान में तत्पर रहने वाले तथा परम पवित्र हैं।

अर्हस्त्वं भीष्म मां द्रष्टुं तपसा स्वेन पार्थिव।

तव ह्यपस्थिता लोका येभ्यो नावर्तते पुनः।।13।।

भूपाल ! आप अपने तपोबल से ही मेरा दर्शन करने के योग्य हैं। आपके लिए वे दिव्य लोक प्रस्तुत हैं, जहां से फिर इस लोक में नहीं आना पड़ता।

पञ्चाशतं षट् च कुरूप्रवीर

शेषं दिनानां तव जीवितम्य।

ततः शुभैः कर्मफलोदयैस्त्वं

समेष्यसे भीष्म विमच्य दहम्।।14।।

कुरूवीर भीष्म ! अब आपके जीवन के कुल छप्पन दिन शेष हैं। तदनन्तर आप इस शरीर का त्याग करके अपने शुभ कर्मो के फलस्वरूप उत्तम लोकों में जायेंगे।

ऐते हि देवा वसवो विमाना–

न्यास्थाय सर्वे ज्वलिताग्निकल्पाः।

अन्तर्हितास्त्वां प्रतिपालयन्ति

काष्ठां प्रपद्यन्तमुदक्पतङ्गम्।।15।।

देखिये, ये प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी देवता और वसु विमानों में बैठकर आकाश में अदृश्यरूप से रहते हुये सूर्य उत्तरायण होने और आपके आने की बाट जोहते हैं।

त्यावर्तमाने भगवत्युदीचीं

सूर्ये दिशं कालवशात् प्रपन्ने।

गन्तासि लोकान् पुरूषप्रवीर

नावर्तते यानुपलभ्य विद्वान्।।16।।

पुरूषों में प्रमुख वीर ! जब भगवान सूर्य कालवश दक्षिणायन से लौटते हुये उत्तर दिशा के मार्ग पर लौटेंगे, उस समय आप उन्हीं लोकों में जाइयेगा, जहां जाकर ज्ञानी पुरूष फिर इस संसार में नहीं लौटते हैं।

NOTES

अमुं च लोकं त्वयि भीष्म याते

ज्ञानानि नङ्क्ष्ययन्त्यरिवलेन वीर।

अतस्तु सर्वे त्वयि संनिकर्षे

समागता धर्मविवेचनाय।।17।।

वीर भीष्म ! जब आप परलोक में चले जाइयेगा, उस समय सारे ज्ञान लुप्त हो जायेंगे, अतः ये सब लोग आपके पास धर्म का विवेचन कराने के लिये आये हैं।

तज्ज्ञातिशोकोपहतश्रुताय

सत्याभिसंधाय युधिष्ठिराय।

प्रबूहि धर्मार्थसमाधियुक्तं

सत्यंवचोऽस्यापनुदाशु शोकम्।।18।।

ये सत्यपरायण युधिष्ठिर बन्धुजनों के शोक से अपना सारा शास्त्र ज्ञान खो बैठे हैं, अतः आप इन्हें धर्म, अर्थ और योग से युक्त यथार्थ बातें सुनकर शीघ्र ही इनका शोक दूर कीजिये।

NOTES

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः (52वाँ अध्याय)

भीष्म का अपनी असमर्थता प्रकट करना, भगवान का उन्हें वर देना तथा ऋषियों एवं पाण्डवों का दूसरे दिन आने का संकेत करके वहां से विदा होकर अपने–अपने स्थानों को जाना

वैशम्पायन उवाच

ततः कृष्णस्य तद् वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम्।

श्रुत्वा शान्तनवो भीष्मः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः।।1।।

वैशम्पायन जी कहते हैं– राजन ! श्री कृष्ण का यह धर्म और अर्थ से युक्त हितकर वचन सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्म ने दोनों हाथ जोड़कर कहा–।।1।।

लोकनाथ महाबाहो शिव नारायणाच्युत।

तव वाक्यमुपश्रुत्य हर्षेणास्मि परिप्लुतः।।2।।

'लोकनाथ ! महाबाहो ! शिव ! नारायण ! अच्युत ! आपका यह वचन सुनकर मैं आनन्द के समुद्र में निमग्न हो गया हूँ।

किं चाहर्माभधास्यामि वाक्यं ते तव संविधौ।

यदा वाचोगतं सर्वे तव वाचि समाहितम्।।5।।

'भला मैं आपके समीप क्या कह सकूंगा ? जबकि वाणी का सारा विंष (विषय) आपकी वेदमयी वाणी में प्रतिष्ठित है।

यच्च किंचित् कचिलोके कर्तव्यं क्रियते च यत्।

त्वत्तस्तन्निःसृतं देव लोके बुद्धिमतो हि ते।।4।।

'देव ! लोक में कहीं भी जो कुछ कर्तव्य किया जाता है, वह सब आप बुद्धिमान् परमेश्वर से ही प्रकट हुआ है।

कथयेद देवलोकं यो देवराजसीपतः।

धर्मकामार्थमोक्षाणां सोऽर्थे ब्रूयात् तवाग्रतः।।5।।

'जो मनुष्य देवराज इन्द्र के निकट देवलोक का वृतान्त बताने का साहस कर सके, वही आपके सामने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की बात कह सकता है।

शराभिपाताद व्यथितं मनो मे मधुसूदन।

गात्राणि चावसीदन्ति न च बुद्धिः प्रसीदते।।6।।

'मधुसूदन ! इन वाणों के गड़ने से जो जलन हो रही है, उसके कारण मेरे मन में बड़ी व्यथा है। सारा शरीर पीड़ा के मारे शिथिल हो गया है और बुद्धि कुछ काम नहीं दे रही है।

न च में प्रतिभा काचिदस्ति किंचित प्रभाषितुम्।

पीऽयमानस्य गोविन्द विषानलसमैः शरैः।।7।।

गोविन्द ! ये बाण विष और अग्नि के समान मुझे निरन्तर पीड़ा दे रहे है, अतः मुझमें कुछ भी कहने की शक्ति नहीं रह गयी है।

बलं में प्रजहातीव प्राणाः संत्वरयन्ति च।

मर्माणि परितव्यन्ति भ्रान्तचित्तस्तथा ह्यहम्।।8।।

'मेरा बल शरीर को छोड़ता–सा जान पड़ता है। ये प्राण निकलने को उताबले हो रहे हैं। मेरे मर्मस्थान में बड़ी पीड़ा हो रही है, अतः मेरा चित्त भ्रान्त हो गया है।

दौर्बल्यात् सज्जते वाङ् मे स कथं वक्तमुत्सहे।

साधु मे त्वं प्रसीदस्व दाशार्हकुलवर्णन।।9।।

'दुर्बलता के कारण मेरी जीभ तालू में सट जाती है, ऐसी दशा में मैं कैसे बोल सकता हूँ। दशाईकुल की वृद्धि करने वाले प्रभा ! आप मुझ पर पूर्ण रूप से प्रसन्न हो जाइये।

तत् क्षस्व महाबाहो न ब्रूयां किंचिदच्युत।

त्वतसंनिधौ च सीदेद्धि वाचस्पतिरपि ब्रुवन।।10।।

'महाबाहो ! क्षमा कीजिये। मैं बोल नहीं सकता। आपके निकट प्रवचन करने में बृहस्पति जी भी शिथिल हो सकते हैं, फिर मेरी क्या बिसात है ?

न दिशिः सम्प्रजानामि नाकाशं न च मेदिनीम्।

केवलं तव वीर्येण तिष्ठामि मधुसूदन।।11।।

'मधुसूदन ! मुझे न तो दिशाओं का ज्ञान है और न आकाश एवं पृथ्वी का ही भान हो रहा है। केवल आपके प्रभाव से ही जी रहा हूँ।

स्वमेव भवांस्तस्माद् धर्मराजस्य यद्धितम्।

NOTES

तद् ब्रवीत्वाशु सर्वेषामागमानां त्वमागमः।।12।।

'इसलिये आप स्वयं ही जिसमें धर्मराज का हित हों, वह बात शीघ्र बताइये, क्योंकि आप शास्त्रों के भी शास्त्र हैं।

NOTES

कथं त्वयि स्थिते कृष्णे शाश्वते लोककर्तारि।

प्रब्रूयान्मद्विधः कश्चिद् गुरौ शिष्य इव स्थिते।।13।।

'श्रीकृष्ण ! आप जगत के कर्ता और सनातन पुरूष हैं। आपके रहते हुये मेरे– जैसा कोई भी मनुष्य कैसे उपदेश कर सकता है ? क्या गुरू के रहते हुये शिष्य उपदेश देने का अधिकारी है?

वासुदेव उवाच :

उपपन्नमिदं वाक्यं कौरवाणां धुरन्धरे।

महावीर्ये महासत्वे स्थिरे सर्वाथदर्शिनि।।14।।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले– भीष्म जी ! आप कुरूकुल का भार वहन करने वाले, महापराक्रमी, परम धैर्यवान्, स्थिर तथा सर्वाथदर्शी है, आपका यह कथन सर्वथा युक्तिसंगत है।

यच्च ममात्थ गाङ्गेय बाणधातरूजं प्रति।

गृहाणात्र वरं भीष्म मत्प्रसादकृतं प्रभो।।15।।

गंगानन्दन भीष्म ! प्रभो ! बाणों के आघात से होने वाली पीड़ा के विषय में जो आपने कहा है, इसके लिये आप मेरी प्रसन्नता से दिये गये इस 'वर' को ग्रहण करें।

न ते ग्लानिर्न ते मूर्छा न दाहो न च ते रुजा।

प्रभविष्यन्ति गाङ्गेय क्षुत्पिवासे न चाप्युत।।6।।

गंगानन्दन भीष्म ! अब आपको न ग्लानि होगी न मूर्छा, न दाह होगा न रोग, भूख और प्यास का कष्ट भी नहीं रहेगा।

ज्ञाक्षानि च समग्राणि प्रतिभास्यन्ति तेऽनघ।

न च ते क्वचिदासक्तिर्बुद्धेः प्रादुर्भविष्यति।।17।।

अनघ ! आपके अन्तःकरण में सम्पूर्ण ज्ञान प्रकाशित हो उठेंगे। आपकी बुद्धि किसी भी विषय में कुण्ठित नहीं होगी।

सत्वस्थं च मनो नित्यं तव भीष्म भविष्यति।

रजस्तयोभ्यां रहितं थनैमुर्क्त इवोडुराट्।।18।।

भीष्म ! आपका मन मेघ के आवरण से मुक्त हुये चन्द्रमा की भांति रजोगुण और तमोगुण से रहित होकर सदा सत्व में स्थित रहेगा।

NOTES

यद यद्य धर्मसंयुक्तमर्थयुक्तमथापि च।

चिन्तयिष्यसि तन्नाग्रया बुद्धिस्तव भविष्यति।।19।।

आप जिस–जिस धर्मयुक्त या अर्थयुक्त विषय का चिन्तन करेंगे, उसमें आपकी बुद्धि सफलतापूर्वक आगे बढ़ती जायेगी।

इमं च राजशार्दूल भूतग्रामं चतुर्विथम्।

चक्षुर्दिव्यं समाश्रित्य द्रक्ष्यस्यमित विक्रम।।20।।

अमित पराक्रमी नृपश्रेष्ठ ! आप दिव्य दृष्टि पाकर स्वेदल, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज–इन चारों प्रकार के प्राणियों को देख सकेंगे।

संसरन्तं प्रजाजालं संयुक्तो ज्ञानचक्षुषा।

भीष्म द्रक्ष्यसि तत्वेन जले मीन इवामले।।21।।

भीष्म ! ज्ञानदृष्टि से सम्पन्न होकर आप संसार बन्धन में पड़ने वाले सम्पूर्ण जीव समुदाय को उसी तरह यथार्थ रूप से देख सकेंगे, जैसे मत्स्य निर्मल जल में सब कुछ देखता रहता है।

वैशम्पायसन उवाच :

ततस्ते व्याससहिताः सर्व एव महर्षयः।

ऋग्यजुःसामसहितैर्वचोभिः कृष्णमार्चयन्।।22।।

वैशम्पायन जी कहते हैं– राजन ! तदनन्तर व्यास– सहित सम्पूर्ण महर्षियों ने ऋक्, यजु तथा सामवेद के मन्त्रों से भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन किया।

ततः सर्वार्तवं दिव्यं पुष्पवर्षे नभस्तलात्।

पपात यत्र वार्ष्णेयः सगाङ्गेयः सपाण्डवः।।23।।

तत्पश्चात् जहां गंगापुत्र भीष्म और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर के साथ वृष्णिवंशी भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान थे, वहां आकाश से सभी ऋतुओं में खिलने वाले दिव्य पुष्पों की वर्षा होने लगी।

वादित्राणि च सर्वाणि जगुश्चप्सरसां गणाः।

न चाहितमनिष्टं च किञ्चित्तत्र प्रदृश्यते।।24।।

सब प्रकार के बाजे बजने लगे, अप्सराओं के समुदाय गीत गाने लगे। वहां कुछ भी ऐसा नहीं देखा जाता था, जो अहितकर और अनिष्टकारक हो।

NOTES

बवौ शिवः सुखो वायुः सर्वगन्धवहः शुचिः।

शान्तायां दिशि शान्ताश्च प्रावदन मृगपक्षिणः।।25।।

शीतल, सुखद, मन्द, पवित्र एवं सर्वथा सुगन्धयुक्त वायु चल रही थी, सम्पूर्ण दिशाएं शान्त थीं और उनमें रहने वाले पशु एवं पक्षी शान्तभाव से मनोहर वचन बोल रहे थे।

ततो मुहूर्ताद् भगवान् सहस्रांशर्दिवाकरः।

दहन् वैनमिवैकान्ते प्रतीच्यां प्रत्यद्वश्यत्।।26।।

इसी समय दो ही घड़ी में भगवान् सहस्रकिरणमाली दिवाकर पश्चिम दिशा के एकान्त प्रदेश में वहां के वनप्रान्त को दग्ध करते हुये से दिखाई दिये।

ततो महर्षयः सर्वे समुत्थाय जनार्दनम्।

भीष्ममामन्त्रयाञ्चक्रू राजानं च युधिष्ठिरम्।।27।।

तब सभी महर्षियों ने उठकर भगवान् श्रीकृष्ण, भीष्म तथा राजा युधिष्ठिर से विदा मांगी।

ततः प्रणाममकरोत् केशवः सहपाण्डवः।
सात्यर्याकः संजयश्चैव स च शारद्वतः कृपः।।28।।

इसके बाद पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण, सात्यकि, संजय तथा शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य ने उन सबको प्रणाम किया।

ततस्ते धर्मनिरताः सम्यक् तैरभिपूजिताः।
श्वः समेष्याम इत्युक्त्वा यथेष्टं त्वरिता ययुः।।29।।

उनके द्वारा भलीभांति पूजित हुये वे धर्मपरायण महर्षि, 'हम लोग फिर कल सबेरे यहां आयेंगे, ऐसा कहकर तुरंत ही अपने–अपने अभीष्ट स्थान को चले गये।

तथैवामन्त्रय गाङ्गेयं केशवः पाण्डवास्तथा।
प्रदक्षिणमुपावृत्य स्थानारुहुः शुभान्।।30।।

इसी प्रकार श्रीकृष्ण और पाण्डव भी गंगानन्दन भीष्म जी से जाने की आज्ञा ले उनकी परिक्रमा करके अपने मंगलमय रथों पर जा बैठे।

ततो रथैः काञ्चनचित्रकूबरै–

र्महीथरायैः समदैश्च दन्तिभिः।
हयैः सुपर्णोरिव चाशुगामिभिः
पदातिभिश्चात्तशरासनादिभिः।।31।।
यद्यौ रथानां पुरतो हि सा चमू–
स्तथैव पश्चादतिमात्रसारिणी।
पुरश्च पश्चाच्च यथा महानदी
तमृश्रवन्तं गिरिमेत्य नर्मदा।।32।।

सुवर्णनिर्मित विचित्र कूबरों वाले रथों, पर्वताकार मतवाले हाथियों, गरूड़ के समान तीव्रगति से चलने वाले घोड़ें तथा हाथ में धनुष बाण आदि लिये हुये पैदल सैनिकों से युक्त वह विशाल सेना रथों के आगे और पीछे भी बहुत दूर तक फैलकर वैसी ही शोभा पाने लगी, जैसे ऋक्षवान् पर्वत के पास हपुंचकर पूर्व और पश्चिम दिशा में भी प्रवाहित होने वाली महानदी नर्मदा सुशोभित होती है।।31–32।।

ततः पुरस्ताद् भगवान् निशाकरः
समुत्थितस्तामभिहर्षयंश्चयूम।
दिवाकरापीतरसा महौषधीः
पुनः स्वकेनैव गुणेन योजयन्।।33।।

इसके बाद पूर्व दिशा के आकाश में भगवान् चन्द्रदेव का उदय हुआ, जो उस सेना का हर्ष बढ़ रहे थे और सूर्य ने जिन बड़ी–बड़ी औषधियों का रस पी लिया था, उन सबको अपनी सुधावर्षी किरणों द्वारा पुनः उनके स्वाभाविक गुणों से सम्पन्न कर रहे थे।

ततः पुरं सुरपुरसम्मितद्युति
प्रविश्यते यदुवृषपाण्डवास्तदा।
यथोचितान् भवनवरान् समाविशञ्
श्रमान्विता मृगपतयो गुहा इव।।34।।

तदनन्तर वे यदुकुल के श्रेष्ठ वीर तथा पाण्डव सुरपुर के समान शोभा पाने वाले हस्तिनापुर में प्रवेश करके यथायोग्य श्रेष्ठ महलों के भीतर चले गये। ठीक उसी तरह, जैसे थके–मांदे सिंह विश्राम के लिये पर्वत की कन्दराओं में प्रवेश करते हैं।

52वाँ अध्याय समाप्त।

NOTES

NOTES

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः (53वां अध्याय)

भगवान श्रीकृष्ण की प्रातक्षर्या, सात्यकिद्वारा उनका संदेश पाकर भाइयों सहित युधिष्ठिर का उन्हीं के साथ कुरूक्षेत्र में पधारना

वैशम्पायन उवाच :

ततः शयनमाविश्य प्रसुप्तो मधुसूदनः।

यामनात्रार्धशेषायां यामिन्यां प्रत्यबुद्धयत।।1।।

वैशम्पायन जी कहते हैं– जनमेजय ! तदनन्तर मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण एक सुन्दर शैया का आश्रय लेकर सो गये। जब आधा पहर रात बीतने को बाकी रह गयी, तब वे जागकर उठ बैठे।

स ध्यानपथमाविश्य सर्वज्ञसानि माधवः।

अवलोक्य ततः पश्चाद् दध्यौ ब्रह्म सनातनम्।।2।।

तत्पश्चात् ध्यानमार्ग में स्थित हो माधव सम्पूर्ण ज्ञानों को प्रत्यक्ष करके अपने सनातन ब्रह्म स्वरूप का चिन्तन करने लगे।

ततः स्तुति पुराणज्ञा रक्तकण्ठाः सुशिक्षिताः।

अस्तुवन् विश्वकर्माणं वासुदेवं प्रजापतिम्।।3।।

इसी समय स्तुति और पुराणों के ज्ञाता, मधुरकण्ठवाले, सुशिक्षित सूत–मागध और वन्दीजन विश्वनिर्माता, प्रजापालक उन भगवान वासुदेव की स्तुति करने लगे।

पठन्ति पाणिस्वनिकास्तथा गायन्ति गायनाः।

शङ्खनद्य मृदङ्गाश्च प्रवाद्यन्ति सहस्रशः।।4।।

हाथ से वीणा आदि बजाने वाले पुरूष स्तुति पाठ करने लगे, गायक गीत गाने लगे और सहस्त्रों मनुष्य शंख एवं मृदंग बजाने लगे।

वीणापणववेणूनां स्वनश्वाति मनोरमः।

सहास इव विस्तीर्णः शुश्रुवे तस्य वेश्मनः।।5।।

वीणा, पणव तथा मुरली का अत्यन्त मनोरम स्वर इस तरह सुनाई देने लगा, मानों उस महल का अट्टहास सब ओर फैल रहा हो।

ततो युधिष्ठिरस्यापि राज्ञो मङ्गलसंहिताः।

उच्चेरूर्मधुरा वाचो गीतवादित्रनिःस्वनाः।।6।।

तत्पश्चात राजा युधिष्ठिर के भवन से भी मधुर, मङ्गलमयी वाणी तथा गीत–वाद्य की ध्वनि प्रकट होने लगी।

NOTES

तत उत्थाय दाशार्हः स्नातः प्राञ्जलिरच्युतः।

जप्त्वा गुह्यं महाबाहुरग्नीनाश्रित्य तस्थिवान्।।7।।

तत्पश्चात् मर्यादा से कभी च्युत न होने वाले महाबाहु। भगवान श्रीकृष्ण ने शैया से उठकर स्नान किया, फिर गूढ़ गायत्री मंत्र का जप करके हाथ जोड़े हुये अग्नि के समीप जा बैठे।।

ततः सहस्त्रं विप्राणां चतुर्वेदविदां तथा।

गवां सहस्त्रेणैकेकं वाचयामास माधवः।।8।।

वहां अग्निहोत्र करने के अनन्तर भगवान माधव ने चारों वेदों के विद्वान एक हजार ब्राम्हणों को बुलाकर प्रत्येक को एक–एक हजार गौएं दान कीं और उनसे वेदमंत्रों का पाठ एवं स्वस्तिवाचन कराया।

मङ्गलालम्भनं कृत्वा आत्मानमवलोक्य च।

आदर्शे विमले कृष्णस्ततः सात्यकिमब्रवीत्।।9।।

इसके बाद माङ्गलिक वस्तुओं का स्पर्श करके भगवान ने स्वच्छ दर्पण में अपने स्वरूप का दर्शन किया और सात्यकि से कहा–।

गच्छ शैनेय जानीहि गत्वा राजनिवेशनम्।

अपि सज्जो महातेजा भीष्मं द्रष्टुं युधिष्ठिरः।।10।।

'शिनिनन्दन ! जाओ, राजमहल में जाकर पता लगाओं कि महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर भीष्म जी के दर्शनार्थ चलने के लिये तैयार हो गये क्या ?

ततः कृष्णस्य वचनात् सात्यकिस्त्वरितो ययौ।

उपगम्य च राजानं युधिष्ठिरमभाषत।।11।।

श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर सात्यकि तुरंत वहां से चल दिये और राजा युधिष्ठिर के पास जोकर बोले–।

युक्तो रथवरो राजन् वासुदेवस्य धीमतः।

समीपमापगेयस्य प्रयाम्यति जनार्दनः।।12।।

'राजन परम बुद्धिमान् भगवान श्रीकृष्ण (वासुदेव) का श्रेष्ठ रथ जुतकर तैयार हो गया है। श्री जनार्दन शीघ्र ही गंगानन्दन भीष्म के समीप जाने वाले हैं।

NOTES

भवत्प्रतीक्षः कृष्णोऽसौ धर्मराज महाद्युते।

यदत्रानन्तरं कृत्यं तद् भवान् कर्तुमहति।।13।।

'महातेजस्वी धर्मराज ! भगवान् श्रीकृष्ण आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब आप जो उचित समझें, वह कार्य कर सकते हैं।'

एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।

सात्यकि के इस प्रकार कहने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने अर्जुन को यह आदेश दिया।

युधिष्ठिर उवाच :

युज्यतां मे रथवरः फाल्गुनाप्रतिमद्युते।।14।।

न सैनिकैश्च यातव्यं यास्यामो वयमेव हि।

न च पीडयितव्यो मे भीष्मो धर्मभृतां वरः।।15।।

अतः पुरासराश्चापि निर्तन्तु धनंजय।

युधिष्ठिर बोले– अनुपम तेजस्वी अर्जुन ! मेरा श्रेष्ठ रथ जोतकर तैयार कराओ। आज सैनिकों को हमारे साथ नहीं जाना चाहिये। केवल हम लोगों को ही चलना है। धनंजय ! धर्मात्माओं में श्रेष्ठ भीष्म जी को अधिक भीड़ बढ़कर कष्ट देना उचित नहीं है। अतः आगे चलने वाले सैनिकों को भी जाने के लिये मना कर देना चाहिये।

अद्यप्रभृति गाङ्गेयः परं गुह्यं प्रवक्ष्यति।।16।।

अतो नेच्छामि कौन्तेय पृथग्जनसमात्रमम्।

कुन्तीनन्दन ! आज से गंगाकुमार भीष्म जी धर्म के अत्यन्त गूढ़ रहस्य का उपदेश करेंगे। अतः मैं भिन्न–भिन्न रूचि रखने वाले साधारण जन समाज को वहां नहीं जुटाना चाहता।

वैशम्पायन उवाच :

स तद्वाक्यमथाज्ञाय कुन्तीपुत्रो धनंजयः।।17।।

युक्तं रथवरं तस्मा आचचक्षे नरर्षभः।

वैशम्पायन जी कहते हैं– जनमेजय ! युधिष्ठिर की आज्ञा शिरोधार्य करके कुन्तीकुमार नररेष्ठ अर्जुन ने वैसा ही किया। फिर आकर उन्हें सूचना दी कि महाराज का श्रेष्ठ रथ तैयार है।

NOTES

ततो युधिष्ठरो राजा यमौ भीमार्जुनावपि।।18।।

भूतानीव समस्तानि ययुः कृष्णनिवेशनम्।

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव सब एक रथ पर आरूढ़ हो श्रीकृष्ण के निवास स्थान पर गये, मानो समस्त महाभूत मूर्तिमान होकर पधारे हों।

आगच्छत्वथ कृष्णोऽपि पाण्डवेषु महात्मसु।।19।।

शैनेयसहितो धीमान् रथमेवान्वपद्यत।

महात्मा पाण्डवों के पदार्पण करने पर सात्यकि सहित बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण भी एक ही रथ पर आरूढ़ हो गये।

रथस्थाः संविदं कृत्वा सुखां पृष्ठवा च शर्वरीम्।।20।।

मेद्यघोषै रथवरैः प्रययुस्ते नरर्षभाः।

रथ पर बैठे–बैठे ही उन सब ने बातचीत की और एक दूसरे से रात्रि के सुखपूर्वक व्यतीत होने का कुशल समाचार पूछा। फिर वे नरश्रेष्ठ मेघ गर्जना के समान गम्भर घोष करने वाले श्रेष्ठ रथों द्वारा वहां से चल पड़े।

बलाहकं मेघपुष्पं शैव्यं सुग्रीवमेव च।।21।।

दारूकश्चोदयामास वासुदेवस्य वाजिनः।

दारूक ने वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण के बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य और सुग्रीव नामक घोड़ों को हांका।

ते हया वासुदेवस्य दारूकेण प्रचोदिताः।।22।।

गां खुराग्रेस्तथा राजल्लिँखन्तः प्रययुस्तदा।

राजन ! उस समय दारूक द्वारा हांके गये श्रीकृष्ण के घोड़े अपनी टापों के अग्रभाग से पृथ्वी पर चिन्ह बनाते हुये बड़े वेग से दौड़े।

ते ग्रसन्त इवाकाशं वेगवन्तो महाबलाः।।23।।

क्षेत्रं धर्मस्य कृत्स्नस्य कुरूक्षेत्रभवातरन्।

उन अश्वों का बल और वेग महान था। वे आकाश को पीते हुए से उड़ चले और बात की बात में सम्पूर्ण धर्म के क्षेत्र–भूत कुरूक्षेत्र में जा पहुंचे।

ततो ययुर्यत्र भीष्मः शरतल्पगतः प्रभुः।।24।।

NOTES

आस्ते महर्षिभिः सार्धे ब्रह्मा देवगणैर्यथा।

तदनन्तर वे सब लोग उस स्थान पर गये, जहां पर प्रभावशाली भीष्म जी बाणशैया पर सो रहे थे। जैसे देवताओं से घिरे हुये ब्रम्हाजी शोभा पाते हैं, उसी प्रकार महर्षियों के साथ भीष्म जी सुशोभित हो रहे थे।

ततोऽवतीर्य गोविन्दो रथात् स च युधिष्ठिरः।।25।।

भीमो गाण्डीवधन्वा च यमौ सात्यकिरेव च।

ऋषीनभ्यर्चयामासुः करानुद्यम्य दक्षिणान्।।26।।

तत्पश्चात् रथ से उतरकर भगवान् श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, भीमसेन, गाण्डीवधारी अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा सात्यकि ने अपने–अपने दाहिने हाथों को उठाकर ऋषियों के प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित किया।

सतैः परिवृतो राजा नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः।

अभ्याजगाम गाङ्गेयं ब्रह्मार्णामव वासवः।।27।।

नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा की भांति भाइयों से घिरे हुये राजा युधिष्ठिर गंगानन्दन भीष्म के समीप गये, मानो देवराज इन्द्र ब्रह्मा जी के निकट पधारे हो।

शरतल्पे शयानं तमादित्यं पतितं यथा।

स ददर्श महाबाहुं भयाच्वागत साध्वसः।।28।।

शर–शैया पर सोये हुये महाबाहु भीष्म जी वैसे ही दिखाई दे रहे थे, मानो सूर्यदेव आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़े हों। युधिष्ठिर ने उसी अवस्था में उनका दर्शन किया। उस समय वे भय से कांप उठे थे।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः (54वाँ अध्याय)

भगवान श्रीकृष्ण और भीष्म की बातचीत

NOTES

जनमेजय उवाच :

धर्मात्मनि महावीर्ये सत्यसंधे जितात्मनि।

देवव्रते महाभागे शरतल्पगतेऽच्युते।।1।।

शयाने वीरशयने भीष्मे शान्तनुनन्दने।

गाङ्गेये पुरूषव्याघ्रे पाण्डवैः पर्युपासिते।।2।।

काः कथाः समवर्तन्त तस्मिन् वीरसमागमे।

हतेषु सर्वसैन्येषु तन्म शंस महामुने।।3।।

जनमेजय ने पूछा– महामुने ! धर्मात्मा, महापराक्रमी, सत्यप्रतिज्ञ, जितात्मा, धर्म से कभी च्युत न होने वाले महाभाग शान्तनुनन्दन गंगाकुमार पुरूषसिंह देवव्रत भीष्म जब वीर–शैया पर सो रहे थे और पाण्डव उनकी सेवा में आकर उपस्थित हो गये थे, उस समय वीर पुरूषों के उस समागम के अवसर पर, जबकि उभयपक्ष की सम्पूर्ण सेनाएं मारी जा चुकीं थीं, कौन–कौन सी बातें हुईं ? यह मुझे बताने की कृपा करें।।1–3।।

वैशम्पायन उवाच :

शरतल्पगते भीष्मे कौरवाणां धुरन्धरे।

आजग्मुर्ऋषयः सिद्ध नारदप्रमुखा नृप।।4।।

वैशम्पायन जी ने कहा– नरेश्वर ! कौरवकुल का भार वहन करने वाले भीष्म जी जब बाणशैया पर सो रहे थे, उस समय वहां नारद आदि सिद्ध महर्षि भी पधारे थे।

हतशिष्टाक्ष राजानो युधिष्ठिरपुरोगमाः।

धृतराष्ट्रक्ष कृष्णक्ष भीमार्जुनयमास्तथा।।5।।

तेऽभिगम्य महात्मानो भरतानां पितामहम्।

अन्वशोचन्त गाङ्गेयमादित्यं पतितं यथा।।6।।

महाभारत– युद्ध में जो लोग मरने से बच जाते गये थे, वे युधिष्ठिर आदि राजा तथा धृतराष्ट्र, श्रीकृष्ण, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव– ये सभी महामनस्वी पुरूष पृथ्वी पर

गिरे हुये सूर्य के समान प्रतीत होने वाले, भरतवंशियों के पितामह, गंगानन्दन भीष्म जी के पास जाकर बारंबार शोक प्रकट करने लगे।

NOTES

मुहुर्तमिव च ध्यात्वा नारदो देवदर्शनः।

उवाच पाण्डवान् सर्वान् हर्ताशष्टोक्ष पार्थिवान्।।7।।

तब दिव्यदुष्टि रखने वाले देवर्षि नारद ने दो घड़ी तक कुछ सोच–विचार कर समस्त पाण्डवों तथा मरने से बचे हुये अन्य नरेशों को सम्बोधित करके कहा–।

प्राप्तकालं समाचक्षे भीष्मोऽयमनुयुज्यताम्।

अस्तमेति हि गाङ्गेयो भानुमानिव भारत।।8।।

'भरतनन्दन युधिष्ठिर तथा अन्स भूपालगण ! मैं आप लोगों को समयोजित कर्तव्य बता रहा हूँ। आप लोग गंगानन्दन भीष्मजी से धर्म और ब्रह्म के विषय में प्रश्न कीजिये, क्योंकि अब ये भगवान सूर्य के समान अस्त होने वाले हैं।

अयं प्राणातुत्सिसृक्षुत्सं सर्वेऽभ्यनुप्रच्छत।

क्रत्स्नान् हि विविधान् धर्मोक्षातुर्वर्ण्यस्य वेत्तम्।।9।।

'भीष्म जी अपने प्राणों का परित्याग करना चाहते हैं, अतः आप सब लोग इनसे अपने मन की बातें पूछ लें, क्योंकि ये चारों वर्णों के सम्पूर्ण एवं विभिन्न धर्मों को जानते हैं।

एष वुद्धः परात्लोकान् सम्प्राप्नोति तनुंत्यजन्।

तं शीघ्रमनुयुञ्जीवध्वं संशयान् मनसि स्थितान्।।10।।

'भीष्म जी अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं और अपने शरीर का त्याग करके उत्तम लोकों में पदार्पण करने वाले हैं, अतः आप लोग शीघ्र ही इनसे अपने मन कें संदेह पूछ लें।

वैशम्पायान उवाच :

एवमुक्ते नारदेन भीष्मीयुर्नराधिपाः।

प्रष्टुं चाशक्नुवन्तस्ते वीक्षांचक्रुः परस्परम्।।11।।

वैशम्पायन जी कहते है– राजन ् नारद जी के ऐसा कहने पर सब नरेश भीष्म जी के निकट आ गये, परन्तु उन्हें उनसे कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। वे सभी एक–दूसरे का मुंह ताकने लगे।

अथावाच हृषीकेश पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।

नान्यस्तु देवकीपुत्राच्छक्तः प्रष्टुं पितामहम्।।12।।

तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर में हृषीकेश की ओर लक्ष्य करके कहा– 'दिव्यज्ञान सम्पन्न देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पितामह से प्रश्न कर सके।'

NOTES

प्रव्याहर यदुश्रेष्ठ त्वमग्र मधुसूदन।

त्वं हि नस्तात सर्वेषां सर्वधर्म विदुत्तमः।।13।।

(फिर श्रीकृष्ण से कहने लगे–) 'मधुसूदन ! यदुश्रेष्ठ ! आप ही पहले वार्तालाप आरम्भ कीजिये। तात ! आप ही हम सब लोगों में सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञेष्ठ ज्ञाता हैं'।

एवमुक्तः पाण्डवेन भगवान् केयावस्तहा।

अभिगम्य दुराधर्षे प्रव्याहारयदच्युतः।।14।।

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर अपनी मर्यादा से कभी च्छुत न होने वाले भगवान श्रीकृष्ण ने दुर्जय भीष्म जी के निकट जाकर इस प्रकार बातचीत की।

वासुदेव उवाच :

कच्चित सुखेन रजनी व्युष्टा ते राजसत्तम।

विस्पष्टलक्ष्णा बुद्धिः कच्चिच्चोपस्थिता तव।।15।।

भगवान श्रीकृष्ण बोले– नृपश्रेष्ठ भीष्म जी ! आप की रात सुख से बीती है न ? क्या आपको सभी ज्ञातव्य विषयों का सुस्पष्ट रूप से दर्शन कराने वाली निर्मल बुद्धि प्राप्त हो गयी ?।

कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रतिभान्ति च तेऽनघ।

न ग्लायते च हृदयं न च ते व्याकुले मनः।।16।।

निष्पाप भीष्म ! क्या आपके अन्तःकरण में सब प्रकार के ज्ञान प्रकाशित हो रहे हैं ? आपके हृदय में ग्लानि तो नहीं है ? आपका मन व्याकुल तो नहीं हो रहा है?।

भीष्म उवाच :

दाहो मोहः श्रमश्चैव कल्लमो ग्लानिस्तथा रूजा।

तव प्रसादाद वार्ष्णेय सद्यः प्रतिगतानि में।।17।।

भीष्म जी बोले– व्रष्णिनन्दन ! आपकी कृपा से मेरे शरीर की जलन, मन का मोह, थकावट, विकलता, ग्लानि तथा रोग में सब तत्काल दूर हो गये थे।

यच्च भूतं भविष्यश्च भवच्च परमुद्यते।

तत् सर्वमनुपश्यामि पाणौ फलमिवार्पितम्।।18।।

परम तेजस्वी पुरूषोत्तम ! अब मैं हाथ पर रखे हुए फल की भांति भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों की सभी बाते सुस्पष्ट रूप से देख रहा हूं।

NOTES

वेदोक्ताश्चैव ये धर्मा वेदान्ताधिकताश्च ये।

तान् सर्वान् सम्प्रपश्यामि वरदानात् तवाच्युत।।19।।

अच्युत ! वेदों में जो धर्म बताये गये हैं तथा वेदान्तों (उपनिषदों) द्वारा जिनको जाना गया है, उन सब धर्मों को मैं आपके वरदान के प्रभाव से प्रत्यक्ष देख रहा हूं।

शिष्टेश्च धर्मों यः प्रोक्तः स च मे हृदि वर्तते।

देशजातिकुलानां च धर्मज्ञेऽमि जनार्दन।।20।।

जनार्दन ! शिष्ट पुरूषों ने जिस धर्म का उपदेश किया है, वह भी मेरे हृदय में स्फुटित हो रहा है। देश जाति और कुल के धर्मों का भी इस समय मुझे पूर्ण ज्ञान है।

चतुर्ष्वाश्रमधर्मेषु योऽर्थः स च हृदि स्थितः।

राज धर्मोक्ष सकलानवगच्छामि केशव।।21।।

चारों आश्रमों के धर्मो में जो सार भूत तत्व है, वह भी मेरे हृदय में प्रकाशित हो रहा है। केशव ! इस समय मैं सम्पूर्ण राजधर्मों को भली भांति जानता हूँ।

यच्च यत्र च वक्तव्यं तद् वक्ष्यामि जर्नादन।

तव प्रसादाद्धि शुभा मनो मे बुद्धिराविशत्।।22।।

जनार्दन ! जिस विषय में जो कुछ भी कहने योग्य बात है, वह सब मैं कहूंगा। आपकी कृपा से मेरे हृदय में निर्मल मन और कल्याणकारी बुद्धि का आवेश हुआ है।

युवेवास्मि समावृत्तस्त्वदनुध्यान वृंहतिः।

वक्तुं श्रेयः समर्थोऽस्मि त्वत्प्रसादाज्जनार्दन।।23।।

जनार्दन ! आपके निरत्नर चिन्तन से मेरी शक्ति इतनी बढ़ गयी हैं कि मैं जवान–सा हो गया हूँ। आपके प्रसाद से अब मैं कल्याणकारी उपदेश में समर्थ हूं।

स्वयं किमर्थे तु भवाञ्श्रेयो न प्राह पाण्डवम्।

किं ते विवक्षितं चात्र तदाशु वह माधव।।24।।

माधव ! तो भी मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप स्वयं ही पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को कल्याणकारी उपदेश क्यों नहीं देते हैं ? इस विषय में आप क्या कहना चाहते हैं ? यह शीघ्र बताइये।

NOTES

वासुदेव उवाच :

यशसः श्रेयसक्षैव मूलं मां विद्धि कौरव।

मत्तः सर्वेऽभिनिवृत्ता भावाः सदसदात्मकाः।।25।।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– कुरूनन्दन ! आप मुझे ही यश और श्रेय का मूल समझे। संसार में जो भी सत् और असत् पदार्थ है, वे सब मुझसे ही उत्पन्न हुये हैं।

शीतांशुक्षन्द्र इत्युक्ते लोके को विस्मयिष्यति।

तथैव यशसा पूर्णे मयि को विस्मयिष्यति।।26।।

'चन्द्रमा शीतल किरणों से सम्पन्न हैं' यह बात कहने–पर जगत् में किसको आश्चर्य होगा ? अर्थात् किसी को नहीं होगा। उसी प्रकार सम्पूर्ण यश से सम्पन्न मुझ परमेश्वर के द्वारा कोई उत्तम उपदेश प्राप्त हो तो उसे सुनकर कौन आश्चर्य करेगा ?

आधेयं तु मया भूयो यशस्तव महाद्युते।

ततो में पिुला बुद्धिस्त्वयि भीष्म समर्पिता।।27।।

महातेजस्वी भीष्म ! मुझे इस जगत् में आपके महान यश की प्रतिष्ठा करनी है, अतः मैंने अपनी विशाल बुद्धि तुझे समर्पित की है।

यावद्धि पृथ्वीपाल पृथ्वीयं स्थास्यति ध्रुवा।

तावत् तत्वाक्षया कीर्तिर्लोकाननुचरिष्यति।।28।।

भूपाल ! जब तक यह अचला पृथ्वी स्थिर रहेगी, तब–तक सम्पूर्ण जगत् में आपकी अक्षय कीर्ति विख्यात होती रहेगी।

यच्च त्वं वक्ष्यसे भीष्म पाण्डवायानुपृच्छते।

वेदप्रवाद इव ते स्थास्यते वसुधातले।।29।।

भीष्म ! इआप पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर उसके उत्तर में जो कहेंगे, वह वेद के सिद्धान्त की भांति इस भूतल पर मान्य होगा।

यश्चैतेन प्रमाणेन योक्ष्यत्यात्मानमात्मना।

स फलं सर्वपुण्यानां प्रेत्य चानुभविष्यति।।30।।

जो मनुष्य आपके इस उपदेश को प्रमाण मानकर उसे अपने जीवन में उतारेगा, वह मृत्यु के बाद सब प्रकार के पुष्यों का फल प्राप्त करेगा।

एतस्मात् कारणाद् भीष्म मतिर्दित्या मया हि ते।

NOTES

दत्ता यशो विप्रथयेत् कथं भूयस्तवेति ह।।31।।

भीष्म ! इसलिये मैंने आपको दिव्य बुद्धि प्रदान की है कि जिस किसी प्रकार से भी आपके महान् यश का इस भूतल पर विस्तार हो।

यावद्धि प्रथते लोके पुरूषस्य यशो भुवि।

तावत् तस्याक्षयं स्थानं भवतीति विनिश्चिता।।32।।

जगत् में जब तक भुतल पर मनुष्य के यश का विस्तार होता रहता है, तब तक उसकी परलोक में अचल स्थिति बनी रहती है, यह निश्चय है।

राजानो हतशिष्टास्त्वां राजन्नभित आसते।

धर्माननुयुयुक्षन्तस्तेभ्यः प्रब्रूहि भारत।।33।।

भारत ! नरेश ! मरने से बचे हुये भूपाल आपके पास धर्म की जिज्ञासा से बैठे हैं। आप इन सबको धर्म का उपदेश करें।

भवान् हि वयसा बृद्धः श्रुताचार समन्वितः।

कुशलो राजधर्माणां सर्वेषामपराक्ष ये।।34।।

आपकी अवस्था सबसे बड़ी है। आप शास्त्रज्ञान तथा सदाचार से सम्पन्न हैं। साथ ही समस्त राजधर्मों तथा अन्य धर्मो के ज्ञान में भी आप कुशल हैं।

जन्मप्रभृति ते कश्चिद् वृजिनं न ददर्श है।

ज्ञातारं सर्वधर्माणां त्वां विदुः सर्वपार्थिवाः।।35।।

जन्म से लेकर आज तक किसी ने भी आप में कोई भी दोष (पाप) नहीं देखा। सब राजा इस बात को स्वीकार करते हैं कि आप सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता हैं।

तेभ्यः पितेव पुत्रेभ्यो राजन ब्रूहि परं नयम्।

ऋषयश्चैव देवाश्च त्वया नित्यमुपासिताः।।36।।

तस्माद् वक्तव्यमेवेदं त्वयावश्यमशेषतः।

राजन ! आप इन राजाओं को भी उसी प्रकार उत्तम नीति का उपदेश करें, जैसे पिता अपने पुत्र को सद्धर्म की शिक्षा है आपने देवताओं और ऋषियों की सदा उपासना की है, इसलिये आपको अवश्य ही सम्पूर्ण धर्मों का उपदेश करना चाहिये।

NOTES

धर्मं शुश्रूषमाणेभ्यः पृष्ठेन च सतना पुनः।।37।।

वक्तव्यं विदुषा चेति धर्ममाहुर्मनीषिणः।

मनीषी पुरूषों ने यह धर्म बताया है कि श्रेष्ठ विद्वान पुरूष से जब कुछ पूछा जाय तो उसे उचित है कि वह सुनने की इच्छा वाले लोगों को धर्म का उपदेश दे'।

अप्रतिब्रुवतः कष्टो दोषोहि भविता प्रभो।।38।।

तस्मात् पुत्रैश्च पौत्रैश्च धर्मान् पृष्टान् सनातनान्।

विद्वाञ्जिज्ञासमानैस्त्वं प्रब्रूहि भरतर्षभ।।39।।

प्रभो ! जो मनुष्य जानते हुए भी श्रद्धापूर्वक प्रश्न करने वाले को उपदेश नहीं देता, उसे अत्यन्त दुःखदायक दोष की प्राप्ति होती है, अतः भरतश्रेष्ठ ! धर्म को जानने की इच्छा वाले अपने पुत्रों और पौत्रों के पूछने पर उन्हें सनातन धर्म का उपदेश करें, क्योंकि आप धर्मशास्त्रों के विद्वान् हैं।

सूची प्रश्न :

निम्नांकित श्लोकों में से किसी एक श्लोक की ससंदर्भ व्याख्या कीजिये।

प्र.1. ततो रामस्य ..... जनार्दनम्।।

प्र.2. ततो वृद्धं ..... पुरूषर्षभः।।

प्र.3. नमस्ते ..... चापराजितः।।

प्र.4. ततः सहस्तं ..... माधवः।।

प्र.5. महाभारत के शांति पर्व (राज्यधर्मानुशासन पर्व) 51वें अध्याय की कथा अपने शब्दों में लिखिए।

प्रदत्त कार्य :

महर्षि वेदव्यास का परिचय देते हुये महाभारत के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालिए।

NOTES

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. महाभारत, वेदव्यास कृत, गीताप्रेस गोरखपुर।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय
3. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, आ.कपिलदेव द्विवेदी

इकाई–पंचम

इकाई की रूपरेखा

भूमिका

उद्देश्य

2.5.1 गंगापुत्र भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को आश्रम धर्म का उपदेश दिया जाना है।

2.5.2 युधिष्ठिर के अनरोण पर पितामह भीष्म द्वारा ब्राह्मण धर्म और कर्तव्य पालन के महत्व विवेचन।

2.5.3 भीष्म द्वारा वर्णाश्रम धर्म का वर्णन तथा राजधर्म की श्रेष्ठता का अभिकथन।

2.5.4 राजधर्म की श्रेष्ठता का पुनः वर्णन एवं इस विषय में इन्द्ररूप धारी विष्णु एवं राजा मान्धाता का संवाद।

2.5.5 इन्द्ररूपधारी विष्णु और राजा मान्धाता का संवाद।

सूची प्रश्न

प्रदत्त कार्य

सन्दर्भ ग्रन्थ

NOTES

इकाई–पंचम

NOTES

भूमिका :

महाभारत का शांति पर्व, राजधर्म, ब्राम्हण धर्मं वर्णाश्रम धर्म की विधि संहिता है। विवेच्य पंचम इकाई के प्रथम सोपान में गंगापुत्र भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिये गये आश्रम धर्म के उपदेश का सारगर्भित विवेचन रूपादित है। इकाई का मध्यम कलेवर पितामह भीष्म द्वारा ब्राम्हण धर्म और कर्तव्यपाल के महत्व के वर्ण से सुशोभित है। इकाई के उत्तरार्द्ध और अन्त में राजधर्म, लोकधर्म, वर्णाश्रम धर्म का मनोहारी चित्रण किया गया है। इस तरह सम्पूर्ण इकाई मानवोचित कर्तव्य धर्म की शिक्षा से परिपूर्ण है।

उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य पाठकों को महाभारत के शान्तिपर्व के 61वें अध्याय से प्रारम्भ हुये : 65वें अध्याय तक वर्णित मानव धर्म के विविधः लक्षणों से पाठकों को अवगत कराना है। इस इकाई को पढ़कर आप महात्मा भीष्म द्वारा उपदिष्ट, आश्रम धर्म, ब्राम्हण धर्म वर्णाश्रम धर्म राजधर्म की श्रेष्ठता के बारे में सीधी सरल भाषा में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

2.5.1

एकषष्टितमोऽध्यायः (61वाँ अध्याय)

आश्रम धर्म का वर्णन

भीष्म उवाच :

आश्रमाणां महाबाहो श्रृणु सत्यपराक्रम।

चतुर्णामपि नामानि कर्माणि च युधिष्ठिर।।1।।

भीष्म जी कहते हैं– सत्य पराक्रमी महाबाहु युधिष्ठिर ! अब तुम चारों आश्रमों के नाम और कर्म सुनो।

वानप्रस्थं भैक्ष्यचर्यं गार्हस्थ्यं च महाश्रमम्।

ब्रह्मचर्याश्रमं प्राहुश्चतुर्थं ब्राह्मणैर्वृतम्।।2।।

ब्रम्हचर्य, महान् आश्रम गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और भैक्ष्यचर्य (सन्यास) ये चार आश्रम हैं। चौथे आश्रम सन्यास का अवलम्बन के केवल ब्राह्मणों ने किया है।

जटाधारणसंस्कारं द्विजातित्वमवात्य च।

आधानादीनि कर्माणि प्राप्त वेदमधीत्य च।।3।।

सदारो वाप्यदारो वा आप्मवान संयतेन्द्रियः।

वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत् कृतकृत्यो गृहाश्रमात्।।4।।

(ब्रम्हचर्य–आश्रम में) चूड़ाकरणसंस्कार और उपनयन के अनन्तर द्विजत्व को प्राप्त हो वेदाध्ययन पूर्ण करके (समावर्तन के पश्चात् विवाह करे, फिर) गार्हस्थ्य–आश्रम में अग्नि होम आदि कर्म सम्पन्न करके इन्द्रियों को संयम में रखते हुये मनस्वी पुरूष स्त्री को साथ लेकर अथवा बिना स्त्री के ही गृहस्थाश्रम से कृतकृत्य हो वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करे।

तत्रारण्यकशास्त्राणि समधीत्य स धर्मवित्।

ऊर्ध्वरेताः प्रव्रजित्वा गच्छत्यक्षरसात्यताम्।।5।।

वहां धर्मज्ञ पुरूष आरण्यकशास्त्रों का अध्ययन करके वानप्रस्थ धर्म का पालन करे। तत्पश्चात् ब्रह्मचर्य–पालनपूर्वक उस आश्रम से निकल जाय और विधिपूर्वक सन्यास ग्रहण कर ले। इस प्रकार सन्यास लेने वाला पुरूष अविनाशी ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है।

एतान्येव निमित्तानि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।

कर्तव्यानीह विप्रेण राजन्नादौ विपक्षिता।।6।।

NOTES

राजन् ! विद्वान् ब्राम्हण को ऊर्ध्वरेता मुनियों द्वारा आचरण में लाये हुये इन्हीं साधनों का सर्वप्रथम आश्रय लेना चाहिये।

चरितब्रह्मचर्यस्य ब्राह्मणस्य विशान्पते।

भैक्षचर्यास्वधीकारः प्रशस्त इह मोक्षिणः।।7।।

प्रजानाथ ! जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है, उस ब्रह्मचारी ब्राम्हण के मन में यदि मोक्ष की अभिलाषा जाग उठे तो उसे ब्रम्हचर्य आश्रम से ही सन्यास ग्रहण करने का उत्तम अधिकार प्राप्त हो जाता है।

यत्रास्तमितशायी स्यान्निराशीरनिकेतनः।

यथोपलब्धजीवी स्यान्मुनिर्दान्तो जितेन्द्रियः।।8।।

सन्यासी को चाहिये कि वह मन और इन्द्रियों को संयम में रखते हुये मुनिवृत्ति से रहे। किसी वस्तु की कामना न करे। अपने लिये मठ या कुटी न बनवावे। निरन्तर घूमता रहे और जहां सूर्यास्त हो जाये वहीं ठहर जाय। प्रारब्ध जो कुछ मिल जाय, उसी से जीवन निर्वाह करे।

निराशीः स्यात् सर्वसमो निर्भोणो निर्विकारवान्।

विप्रः क्षेमाश्रमं प्राप्तो गच्छत्यक्षरसात्यताम्।।9।।

आशा तृष्णा का सर्वथा त्याग करके सबके प्रति समान भाव रक्खे। भोगों से दूर रहे और हृदय में किसी प्रकार का विकार न आने दे। इन्हीं सब धर्मों के कारण इस आश्रम को 'क्षेमाश्रम' (कल्याण प्राप्ति का स्थान) कहते हैं। इस आश्रम में आया हुआ ब्राम्हण अविनाशी ब्रम्ह के साथ एकता प्राप्त कर लेता है।

अधीत्य वेदान् कृतसर्वकृत्यः

संतानमुत्पाद्य सुखानि भुक्त्वा।

समाहितः प्रचरेद् दुश्चरं यो

गार्हस्थधर्मे मुनिधर्मजुष्टम्।।10।।

अब ब्रहस्थाश्रम के धर्म सुनो– जो वेदों का अध्ययनपूर्ण करके समस्त वेदोक्त शुभकर्मों का अनुष्ठान करने के पश्चात् अपनी विवाहिता पत्नी के गर्भ से संतान उत्पन्न कर उस आश्रम

के न्यायोचित भोगों को भोगता और एकाग्रचित्त हो मुनियोचित धर्म से युक्त दुष्कर गार्हस्थ्य धर्म का पालन करता है, वह उत्तम है।

एवदार तुष्ट स्त्वृतुकाल गामी

नियोगसेवी न शठो न जिह्मः।

मिताशनो देवरतः कृतज्ञः

सत्यो मृदश्चनृशंसः क्षमावान्।

गृहस्थ को चाहिये कि वह अपनी ही स्त्री में अनुराग रखते हुये संतुष्ट रहे। ऋतुकाल में ही पत्नी के साथ समागम करे। शास्त्रों की आज्ञा का पालन करता रहे। शठता और कुटिलता से दूर रहे। परिमिट आहार ग्रहण करे। देवताओं की आराधना में तत्पर रहे। उपकार करने वालों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे। सत्य बोले। सबके प्रति मृदुभाव रखे। किसी के प्रति क्रूर न बने और सदा क्षमाभाव रखे।

दान्तो विद्येद्यो हत्यकत्येऽप्रमत्तो

ह्मन्नस्य दाता सतते द्विजेभ्यः।

अमत्सरी सर्वलिङ्गप्रदाता।

वैताननित्यक्ष गृहाश्रमी स्यात्।।12।।

गृहस्थाश्रमी पुरूष इन्द्रियों का संयम करे, गुरूजनों एवं शास्त्रों की आज्ञा माने, देवताओं और पितरों की तृप्ति के लिये हव्य और कव्य समर्पित करने में कभी भूल न होने दे, ब्राम्हणों को निरन्तर अन्नदान करे, ईर्ष्या–द्वेष से दूर रहे, अन्य सब आश्रमों को भोजन देकर उनका पालन–पोषण करता रहे और सदा यज्ञ–यागादि में लगा रहे।

अथात्र नारायणर्गातमाहु–

र्महर्षयस्तात महानुभावाः।

महार्थमत्ययन्ततपःप्रयुक्तं

तदुच्यमानं हि मया निबोध।।13।।

तात ! इस विषय में महानुभाव महर्षिगण नारायण गीत का उल्लेख किया करते हैं जो महान् अर्थ से युक्त और अत्यन्त तपस्या द्वारा प्रेरित होकर कहा गया है। मैं उसका वर्णन करता हूं, तुम सुना।

सत्यार्जवं चातिथिपूजनं च

NOTES

धर्मस्तथार्थश्च रतिः स्वदारैः।

निषेवितव्यानि सुखानि लोके

ह्यस्मिन् परे चैव मतं ममैतत्।।14।।

NOTES

'गृहस्थ पुरूष इस लोक में सत्य, सरलता, अतिथि सत्कार, धर्म, अर्थ, अपनी पत्नी के प्रति अनुराग तथा सुख का सेवन करे। ऐसा होने पर ही उसे परलोक में भी सुख प्राप्त होते हैं, यह मेरा मत है।

भरणं पुत्रदाराणां वेदानांधारणं तथा

वसतामाश्रमं श्रेष्ठं वदन्ति परमर्षयः।।15।।

श्रेष्ठ आश्रम गार्हस्थ में निवास करने वाले द्विजों के लिये महर्षिगण यह कर्तव्य बताते हैं कि वह स्त्री और पुत्रों का भरण–पोषण तथा वेदशास्त्रों का स्वाध्याय करे।

एवं हि यो ब्राम्हणों यज्ञशीलो

गार्हस्थ्यमध्यावसते यथावत्।

गृहस्थवृत्तिं प्रविशोध्य सम्यक्

स्वर्गे विशुद्धं फलमाप्नुते सः।।16।।

जो ब्राम्हण इस प्रकार स्वभावतः यज्ञ परायण हो, गृहस्थ–धर्म का यथावत् रूप से पालन करता है, वह गृहस्थ–वृत्ति का अच्छी तरह शोधन करके स्वर्गलोक में विशेद्ध फल का भागी होता है।

तस्य देह परित्यागादिष्टाः कामाक्ष्या मताः।

आनन्त्यायोपतिष्ठन्ति सर्वतोऽक्षिशिरोमुखाः।।17।।

उस गृहस्थ को देह त्याग के पश्चात् उसके अभीष्ट मनोरथ अक्षय रूप से प्राप्त होते हैं। वे उस पुरूष का संकल्प जानकर इस प्रकार अनन्तकाल तक के लिये उसकी सेवा में उपस्थित हो जाते हैं, मानो उनके नेत्र, मस्तक और मुख सभी दिशाओं की ओर हों।

स्मरन्ने को जपन्नेकः सर्वानेको युधिष्ठिर।

एकस्मिन्नेव चाचार्ये शुश्रूषुर्मलपङ्कवान।।19।।

युधिष्ठिर ! ब्रम्हचारी को चाहिये कि वह अकेला ही वेद मन्त्रों का चिन्तन और अभीष्ट मन्त्रों का जप करते हुये सारे कार्य सम्पन्न करे, अपने शरीर में मैल और कीचड़ लगी हो तो भी वह सेवा के लिये उद्यत हो एकमात्र आचार्य की ही परिचर्या में संलग्न रहे।

ब्रह्मचारी व्रती नित्यं नित्यं दीक्षापरो वशी।

परिचार्य तथा वेदं कृत्यं कुर्वन् वसेत् सदा।।19।।

ब्रम्हचारी निम्य निरन्तर मन और इन्द्रियों को वश में रखते हुये व्रत एवं दीक्षा के पालन में तत्पर रहे। वेदो का स्वाध्याय करते हुये सदा कर्तव्य कर्मों के पालनपूर्वक गुरू गृह में निवास करे।

NOTES

शुश्रूषां सततं कुर्वन् गुरोः सम्प्रणमेत च।

षट्कर्मसु निवृत्तक्ष न प्रभृत्तश्च सर्वशः।।20।।

निरन्तर गुरू की सेवा में संलग्न रहकर उन्हें प्रणाम करे। जीवन–निर्वाह के उद्देश्य से किये जाने वाले यजन–याजन, अध्ययन–अध्यापन तथा दान और प्रतिग्रह–इन छः कर्मों से अलग रहे और किसी भी असत् कर्म में वह कभी प्रवृत्त न हो।

न चरत्यधिकारेण सेवेत द्विषतो न च।

एषोऽऽश्चमपदस्तात ब्रह्मचारिण इष्यते।।21।।

अपने अधिकार का प्रदर्शन करते हुये व्यवहार न करें, द्वेष रखने वालों का संग न करे। वत्स युधिष्ठिर। ब्रम्हचारी के लिये यही आश्रम धर्म अभीष्ट है।

द्विषष्टितमोऽध्यायः (62वाँ अध्याय)

ब्राम्हण धर्म और कर्तव्यपालन का महत्व

युधिष्ठिर उवाच :

शिवान् सुखान् महोदर्कानहिंस्त्राल्लो कॅसम्मतान्।

ब्रूहि धर्माम् सुखोपायान् मद्विधानां सुखावहान्।।1।।

युधिष्ठिर बोले– पितामह ! अब आप ऐसे धर्मों का वर्णन कीजिये, जो कल्याणमय, सुखमय, भविष्य में अभ्युदयकारी, हिंसा रहित, लोक सम्मानित, सुखदायक तथा मुझ जैसे–लोगों के लिये सुखपूर्वक आचरण में लाये जा सकते हो।।1।।

भीष्म उवाच :

ब्राह्मणस्य तु चत्वारस्त्वाश्रमा विहिताः प्रभो।

वर्णास्तान् नानुवर्तन्ते त्रयो भारतसत्तम।।2।।

भीष्म जी ने कहा– प्रभो ! भरतवंशावतंस युधिष्ठिर ! चारों आश्रम ब्राम्हणों के लिये ही विहित है। अन्य तीनों वर्णों के लोग उन सभी आश्रमों का अनुसरण नहीं करते हैं।

NOTES

उक्तानि कर्माणि बहूनि राजन्

स्वर्ग्याणि राजन्यपरायर्णानि।

नेमानि दृष्टान्तविद्यौ स्मृतानि

क्षात्रे हि सर्वे विहितं यथावत्।।3।।

राजन् ! क्षत्रिय के लिये शास्त्र में बहुत से ऐसे स्वर्गसाधक कर्म बताये गये हैं, जो हिंसा प्रधान हैं, जैसे युद्ध ! परन्तु ये कर्म ब्राम्हण के लिये आदर्श नहीं हो सकते, क्योंकि क्षत्रिय के लिये सभी प्रकार के कर्मों का यथोचित विधान है।

क्षात्राणि वैश्यानि च सेवमानः

शौद्राणि कर्माणि च ब्राह्मणः सन्।

अस्मिँल्लोके निन्दितो मन्दचेताः

परे च लोके निरयं प्रयाति।।4।।

जो ब्राम्हण होकर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्मो का सेवन करता है, वह मन्दबुद्धि पुरूष इस लोक में निन्दित और परलोक में नरकगामी होता है।

या संज्ञा विहिता लोके दासे शुनिवृके पशौ।

विकर्मणि स्थिते विप्रे सैव संज्ञा च पाण्डव।।15।।

पाण्डुनन्दन ! लोक में दास, कुत्ते, भेड़िये तथा अन्य पशुओं के लिये जो निन्दासूचक संज्ञा दी है, अपने वर्णधर्म के विपरीत कर्म में लगे हुये ब्राम्हण के लिये भी वही संज्ञा दी जाती है।

षटकर्मसम्प्रवृत्तस्य आश्रमेषु चतुर्ष्वपि।

सर्वधर्मोपपन्नस्य संवृतस्य कृतात्मनः।।6।।

ब्राह्मणस्य विशुद्धस्य तपस्यभिरतस्य च।

निराशियो वदान्यस्य लोका ह्यक्षरसम्मिताः।।7।।

जो ब्राम्हण यज्ञ करना–कराना, विद्या पढ़ना–पढ़ाना तथा दान लेना और देना–इन छः कर्मों में ही प्रवृत्त होता है, चारों आश्रमों में स्थित हो उनके संपूर्ण धर्मो का पालन करता है, धर्ममय कवच से सुरक्षित होता है और मन को वश में किये रहता है, जिसके मन में कोई

कामना नहीं होती, जो बाहर–भीतर से शुद्ध, तपस्यापरायण और उदार होता है उसे अविनाशी लोक प्राप्त होते हैं।।6–7।।

यो यस्मिन कुरूते कर्म याद्दशं येन यत्र च।

तादृशं तादृशेनैव स गुणं प्रतिपद्यते।।8।।

NOTES

जो पुरूष जिस अवस्था में, जिस देश अथवा काल में, जिस उद्देश्य से जैसा कर्म करता है, वह (उसी अवस्था में वैसे ही देश अथवा काल में) वैसे भाव से उस कर्म का वैसा ही फल पाता है।

वृद्धया कृषिवणिक्त्वेन जीवसंजीवनेन च।

वेत्तुमर्हसि राजेन्द्र स्वाध्यायगणितं महत्।।9।।

राजेन्द्र वैश्य की ब्याज लेने वाली वृत्ति, खेती और वाणिज्य के समान तथा क्षत्रिय के प्रजापालनरूप कर्म के समान ब्राम्हणों के लिये वेदाभ्यासरूपी कर्म ही महान् है– ऐसा तुम्हें समझना चाहिये।

कालसंचोदितो लोकः कालपर्यायनिश्चितः।

उत्तमाध्ममध्यानि कर्माणि कुरूतेऽपशः।।10।।

काल के उलट फेर से प्रभावित तथा स्वभाव से प्रेरित हुआ मनुष्य विवश–सा होकर उत्तम, मध्यम और अधम कर्म करता है।

अन्तवन्ति प्रथानानि पुरा श्रेयस्कराणि च।

स्वकर्मनिरतो लोके ह्मश्वरः सर्वतोमुखः।।11।।

पहले के जो कल्याणकारी और अमङ्गलकारी शुभाशुभ कर्म हैं वे ही प्रधान होकर इस शरीर का निर्माण करते हैं। इस शरीर के साथ ही उनका भी अन्त हो जाता है, परंतु जगत् में अपने वर्णाश्रमोचित कर्म के पालन में त्तपर रहने वाला पुरूष तो हर अवस्था में सर्वव्यापी और अविनाशी ही है।

NOTES

त्रिषष्ठितमोऽध्यायः (63वाँ अध्याय)

वर्णाश्रम धर्म का वर्णन तथा राजधर्म की श्रेष्ठता

भीष्म उवाच :

ज्याकर्षणं शत्रुनिबर्हणं च कृषिर्वणिज्या पशुपालनं च।

शुश्रूषणं चापि तथार्थहेतोस्कार्यमेतत परमं द्विजस्य।।1।।

भीष्म जी कहते हैं– राजन ! धनुष की डोरी खींचना, शत्रुओं को उखाड़ फेंकना, खेती, व्यापार और पशुपालन करना अथवा धन के उद्देश्य से दूसरों की सेवा करना– ये ब्राह्मण के लिये अत्यन्त निषिद्ध कर्म हैं।

सेव्यं तु ब्रह्म षट्कर्म गृहस्थेन मनीषिणा।

कृतकृत्यस्य चारण्ये वासो विप्रस्य शस्यते।।2।।

मनीषी ब्राह्मण यदि गृहस्थ हो तो उसके लिये वेदों का अभ्यास और यजन–याजन आदि छः कर्म ही सेवन करने योग्य हैं। गृहस्थ आश्रम का उद्देश्य पूर्ण कर लेने पर ब्राह्मण के लिये (वानप्रस्थी होकर) वन में निवास करना उत्तम माना गया है।

राजप्रेष्यं कृषिधनं जीवनं च वणिक्पथा।

कौटिल्यं कौलटेयं च कुसीदं च विवर्जयेत्।।3।।

गृहस्थ ब्राह्मण राजा की दासता, खेती के द्वारा धन का उपार्जन व्यापार से जीवन निर्वाह, कुटिलता, व्यभिचारिणी स्त्रियों के साथ व्यभिचारकर्म तथा सूदखोरी छोड़ दे।

शूद्रो राजन् भवति ब्रह्मबन्धु–

दुर्श्चारित्रो यश्च धर्मादपेतः।

वृषलीपतिः विशुनो नर्तनश्च

राजप्रेष्यो यश्च भवेद् विकर्मा।।4।।

राजन् ! जो ब्राम्हण दुश्चरित्र, धर्महीन, शूद्रजातीय कुलटा स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला, चुगलखोर, नाचने वाला, राजसेवक तथा दूसरे–दूसरे विपरीत कर्म करने वाला होता है, वह ब्राह्मणत्व से गिरकर शूद्र हो जाता है।

जपन् वेदान जपंश्चापि राजन्

समःशूद्रैर्दासवच्चापि भोज्यः।

एते सर्वे शूद्रसमा भवन्ति

राजन्नतान् वर्जयेद् देवकृत्ये।।5।।

NOTES

नरेश्वर ! उपर्युक्तदुर्गुणों से युक्त ब्राम्हण वेदों का स्वाध्याय करता हो या न करता हो, शूद्रों के ही समान है। उसे दास की भांति पंक्ति से बाहर भोजन कराना चाहिये। ये राज–सेवक आदि सभी अधम ब्राम्हण शूद्रो के ही तुल्य हैं। राजन् ! देवकार्य में इनका परित्याग कर देना चाहिए।

निर्मर्यादे चाशुचौ क्रूरवृतौ

हिंसात्मके व्यक्तधर्मस्ववृते।

हव्यं कव्यं यानि चान्यानि राजन्

देयान्यदेयानि भवन्ति चास्मै।।6।।

राजन् ! जो ब्राह्मण मर्यादा शून्य, अपिवत्र, क्रूर स्वभाव वाला, हिंसापरायण तथा अपने धर्म और सदाचार का परित्याग करने वाला, हिंसापरायण तथा अपने धर्म और सदाचार का परित्याग करने वाला है, उसे हव्य कव्य तथा दूसरे दान देना न देने के ही बराबर है।

तस्माद् धर्मो विहितो ब्राह्मणस्य

दमः शौचभार्जवं चापि राजन्

तथा विप्रस्याश्रमाः सर्व एव

पुरा राजन् ब्राह्मणा वै निसृष्टाः।।7।।

अतः नरेश्वर ! ब्राह्मण के लिये इन्द्रियसंयम, बाहर–भीतर की शुद्धि और सरलता के साथ–साथ धर्माचरण का ही विधान है। राजन ! सभी आश्रम ब्राह्मणों के लिये ही है क्योंकि सबसे पहले ब्राह्मणों की ही सृष्टि हुई है।

यः स्याद् दान्तः सोमपश्चार्यशीलः

सानुक्रोशः सर्वसहो निराशीः

ऋजुर्मृदुरन्तशंसः क्षमावान्

स वै विप्रो नेतरः पापकर्मा।।8।।

जो मन और इन्द्रियों को संयम में रखने वाला, सोमपात्र करके सोमरस पीने वाला, सदाचारी, दयालु, सबकुछ सहन करने वाला, निष्काम, सरल, मृदु, क्रूरतारहित और

क्षमाशील हो वह ब्राम्हण कहलाने योग्य है। उससे भिन्न जो पापाचारी है उसे ब्रराम्हण नहीं समझना चाहिये।

NOTES

शूद्रं वैश्यं राजपुतं च राजलँलोकाः सर्वे संक्षिता धर्मकामाः।

तस्माद् वर्णाञ्शान्तिधर्मेष्वसक्तान् मत्वा विष्णुर्नेच्छतिपाण्डुपुत्र।।9।।

राजन् ! पाण्डुपुत्र ! धर्मपालन की इच्छा रखने वाले सभी लोग, सहायता के लिये शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय की शरण लेते हैं अतः जो वर्ण शान्तिधर्म (मोक्ष–साधन) में असमर्थ माने गये हैं, उनको भगवान् विष्णु शान्तिपरकधर्म का उपदेश करना नहीं चाहते।

लोके चेदं सर्वलोकस्य न स्याच्चातुवर्णे वेदवादाश्च न स्युः।

सर्वाक्षेज्याः सर्वलोकक्रियाश्च सद्यः सर्वे चाश्रमस्था न वै स्युः।।10।।

यदि भगवान विष्णु यथायोग्य विधान न करे तो लोक में जो सब लोगों को यह सुख आदि उपलब्ध है, वह न रह जाय। चारों वर्ण तथा वेदों के सिद्धान्त टिक न सके। सम्पूर्ण यज्ञ तथा समस्त लोक की क्रियायें बंद हो जाय तथा आश्रमों में रहने वाले सब लोग तत्काल विनष्ट हो जायें।

यश्च त्रयाणां वर्णानाभिच्छेदाश्रम सेवनम्।

चातुराश्रम्यदुष्टांक्ष धर्मास्ताञ्श्रृणु पाण्डव।।11।।

पाण्डुनन्दन ! जो राजा अपने राज्य में तीनों वर्णों (ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य) के द्वारा शास्त्रोक्त रूप से आश्रम का सेवन कराना चाहता हो, उसके लिये जानने योग्य जो चारों आश्रमों के लिये उपयोगी धर्म हैं, उसका वर्णन करता हूं सुनो।

शुश्रूषाकृतकार्यस्य कृतसंतानकर्मणः।

अभ्यनुज्ञातराजस्य शूद्रस्य जगतीपते।।12।।

अल्पान्तरगतस्यापि दशधर्मगतस्य वा।

आरमा विहिताः सर्वे वर्जयित्वा निराशिषम्।।13।।

पृथ्वीनाथ ! जो शूद्र तीनों वर्णों (ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, की सेवा करके कृतार्थ हो गया है, जिसने पुत्र उत्पन्न कर लिया है, शौच और सदाचार की दृष्टि से जिसमें अन्य त्रैवर्णिकों की अपेक्षा बहुत कम अन्तर रह गया है अथवा जो मनुप्रोक्त दस धर्मों के पालन में तत्पर रहा है, वह शूद्र यदि राजा की अनुमति प्राप्त कर ले तो उसके लिये सन्यास को छोड़कर शेष सभी आश्रम विहित हैं।

भैक्ष्यचर्यां ततः प्राहुस्तस्य तद्धर्मचारिणः।

तथा वैश्यस्य राजेन्द्र राजपुत्रस्य चैव हि।।14।।

राजेन्द्र ! पूर्वोक्त धर्मो का आचरण करने वाले शूद्र के लिये तथा वैश्य और क्षत्रिय के लिये भी भिक्षा मांगकर निर्वाह करने का विधान है।

NOTES

कृतकृत्यो वयोऽतीतो राजः कृतपरिश्रमः।

वैश्यो गच्छेदनुज्ञातो नृपेणाश्रमसंश्रयम्।।15।।

अपने वर्णधर्म का परिश्रम पूर्वक पालन करके कृतकृत्य हुआ वैश्य अधिक अवस्था व्यतीत हो जाने पर राजा की आज्ञा लेकर क्षत्रियोचित वानप्रस्थ आश्रमों का ग्रहण करें।

वेदानथीत्य धर्मेण राजशास्त्राणि चानघ।

संतानादीनि कर्माणि कृत्वा सोमं निषेण्य च।।16।।

पालयित्वा प्रजाः सर्वा धर्मेण वदतां वर।

राजसूयाश्वमेधादीन् मखानन्यांस्तथैव च।।17।।

आनयित्वा यथापाठं विप्रेभ्यो दत्तदक्षिणः।

संग्रामे विजयं प्राप्य तथाल्पं यदि वा बहु।।18।।

स्थापयित्वा प्रजापालं पुत्रं राज्ये च पाण्डव।

अन्यगोत्रं प्रशस्तं वा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभ ।।19।।

अर्चयित्वा पितृन सम्यक् पितृयज्ञैर्यथाविधि।

देवान् यज्ञैऋषीन् वेदैरर्चयित्वा तु यत्नतः।।20।।

अन्तकाले च सम्प्राप्ते य इच्छेदाश्रमान्तरम्।

सोऽनुपूर्व्याश्रमान् राजन् गत्वा सिद्धिवाप्नुयात्।।21।।

निष्पाप नरेश ! राजा को चाहिए कि पहले धर्माचरणपूर्वक वेदों तथा राजशास्त्रों का अध्ययन करे। फिर संतानोत्पादन आदि कर्म करके यज्ञ में सोमरस का सेवन करे। समस्त प्रजाओं का धर्म के अनुसार पालन करके राजसूय, अश्वमेध तथा दूसरे–दूसरे यज्ञों का अनुष्ठान करें। शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार सब सामग्री एकत्र करके ब्राम्हणों को दक्षिणा दे। संग्राम में अल्प या महान् विजय पाकर राज्य पर प्रजा की रक्षा के लिये अपने पुत्र को स्थापित कर दे। पुत्र न हो तो दूसरे गोत्र के किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त कर दे। वक्ताओं में श्रेष्ठ क्षत्रिय शिरोमणि पाण्डुनन्दन। पितृयज्ञों द्वारा विधिपूर्वक पितरों का,

देवयज्ञों द्वारा देवताओं का तथा वेदों के स्वाध्याय द्वारा ऋषियों का यत्नपूर्वक भलीभांति पूजन करके अन्तकाल आने पर जो क्षत्रिय दूसरे आश्रमों को ग्रहण करने की इच्छा करता है, वह क्रमशः आश्रमों को अपनाकर परम सिद्धि को प्राप्त होता है।।16–21।।

NOTES

राजर्षित्वेन राजेन्द्र भैक्ष्यचर्यों न सेवया।

अपेतगृह धर्मोऽषि चरेज्जीवितकाम्यया।।22।।

गृहस्थ धर्मों का त्याग कर देने पर भी क्षत्रिय को ऋषि–भाव से वेदान्त श्रवण आदि सन्यास धर्म का पालन करते हुये जीवन रक्षा के लिये ही भिक्षा का आश्रय लेना चाहिये, सेवा कराने के लिये नहीं।

न चैतत्रैष्ठिकं कर्म त्रयाणां भूरिदक्षिण।

चतुर्णां राजशार्दूल प्राहुराश्रमवासिनाम्।।23।।

पर्याप्त दक्षिणा देने वाले राजसिंह ! यह भैक्ष्यचर्या क्षत्रिय आदि तीन वर्णों के लिये नित्य या अनिवार्स कर्म नहीं है। चारों आश्रमवासियों का कर्म उनके लिये ऐच्छिक ही बताया गया है।

बाह्वायत्तं क्षत्रियैर्मानवानां

लोकश्रेष्ठं धर्ममासेवमानैः।

सर्वे धर्माः सोपधर्मास्त्रायाणां

राज्ञो धर्मादिति वेदाच्छृणोमि।।24।।

राजन् ! राजधर्म बाहुबल के अधीन होता है। वह क्षत्रिय के लिये जगत् का श्रेष्ठतम् धर्म है, उसका सेवन करने वाले क्षत्रिय मानवमात्र की रक्षा करते हैं। अतः तीनों वर्णों के उपधर्मों सहित जो अन्यान्य समस्त धर्म हैं। वे राजधर्म से ही सुरक्षित रह सकते हैं, यह मैंने वेद–शास्त्र से सुना है।

यथा राजन् हस्तिपदे पदानि

संलीयन्ते सर्वसत्वोद्भवानि।

एवं धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान्

सर्वावस्थान् सम्प्रलीनान् निबोध।।25।।

नरेश्वर ! जैसे हाथी के पदचिन्ह में सभी प्राणियों के पदचिन्ह विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सब धर्मों को सभी अवस्थाओं में राजधर्म के भीतर ही समाविष्ट हुआ समझो।

अल्पाश्रयानल्पफलान् वदन्ति

धर्मानिन्यान् धर्मविदो मनुष्याः।

महाश्रयं बहुकल्याणरूपं

क्षात्रं धर्मं नेतरे प्राहुरार्याः।।26।।

NOTES

धर्म के ज्ञाता आर्य पुरूषों का कथन है कि अन्य समस्त धर्मों का आश्रय तो अल्प है ही, फल भी अल्प ही है। परन्तु छात्र धर्म का आश्रय भी महान् है और उसके फल भी बहुसंख्यक एवं परमकल्याणरूप, अतः, इसके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है।

सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः

सर्वे वर्णाः पाल्यमाना भवन्ति।

सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजं–

स्त्योगं धर्मं चाहुरग्रन्थं पुराणम्।।27।।

सभी धर्मों में राजधर्म ही प्रधान हैं, क्योंकि उसके द्वारा सभी वर्णों का पालन होता है। राजन ! राजधर्मों में सभी प्रकार के त्याग का समावेश है और ऋषिगण त्याग को सर्वश्रेष्ठ एवं प्राचीन धर्म बताते हैं।

गज्जेत् त्रयी दण्डनीतौ हतायां

सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुविबुद्धाः।

सर्वे धर्माक्षाश्रमाणां हताः स्युः

क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे।।28।।

यदि दण्डनीति नष्ट हो जाय तो तीनों वेद रसातल को चले जायं और वेदों के नष्ट होने से समाज में प्रचलित हुये सारे धर्मों का नाश हो जाय। पुरातन राजधर्म जिसे छात्रधर्म भी कहते हैं, यदि लुप्त हो जाय तो आश्रमों के सम्पूर्ण धर्मों का ही लोप हो जायेगा।

सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः

सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु चोक्ताः।

सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः

सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः।।29।।

राजा के धर्मों में सारे त्यागों का दर्शन होता है, राजधर्मों में सारी दीक्षाओं का प्रतिपादन हो जाता है, राजधर्म में सम्पूर्ण लोकों का समावेश हो जाता है।

यथा जीवाः प्राकृतैर्वध्यमाना

धर्म श्रुतानामु पपीऽनाय

एवं धर्मा राजधर्मैर्वियुक्ताः

संचिन्वत्तो नाद्रियन्ते स्वधर्मम्।।30।।

NOTES

व्याध आदि नीच प्रकृति के मनुष्यों द्वारा मारे जाते हुये पशु–पक्षी आदि जीव जिस प्रकार घातक के धर्म का विनाश करने वाले होते हैं, उसी प्रकार धर्मात्मा पुरूष यदि राजधर्म से रहित हो जाय तो धर्म धर्म का अनुसंधान करते हुये भी वे चोर–डाकुओं के उत्पात से स्वधर्म के प्रति आदर का भाव नहीं रख पाते हैं और इस प्रकार जगत की हानि में कारण बन जाते हैं (अतः राजधर्म सबसे श्रेष्ठ धर्म है)।।30।।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः (64वाँ अध्याय)

राजधर्म की श्रेष्ठता का वर्णन और इस विषय में इन्द्ररूप धारी विष्णु और मान्धाता का संवाद

वैशम्पायन उवाच :

चाहुराश्रम्य धर्माश्च यतिधर्माश्च पाण्डव।

लोकवेदोत्तराश्चैव क्षात्रधर्मे समाहिताः।।1।।

भीष्म जी कहते हैं– पाण्डुनन्दन ! चारों आश्रमों के धर्म, पतिधर्म तथा लौकिक और वैदिक उत्कृष्ट धर्म सभी क्षत्रधर्म में प्रतिष्ठित हैं।।1।।

सर्वाण्येतानि कर्माणि क्षात्रे भरतसत्तम।

निराशिषो जीवलोकाः क्षत्रधर्मे डव्यवस्थिते।।2।।

भरतश्रेष्ठ ! ये सारे कर्म क्षत्रधर्म पर अवलम्बित हैं। यदि क्षत्रधर्म प्रतिष्ठित न हो तो जगत के सभी जीव अपनी मनोवान्छित वस्तु पाने से निराश हो जाय।

अप्रत्यतं बहुद्वारं धर्ममाश्रमवासिनाम्।

प्ररूपयन्ति तद्भावमागमैरैव शाश्वतम्।।3।।

आश्रमवासियों का सनातन धर्म अनेक द्वारवाला और प्रत्यक्ष है, विद्वान पुरूष शास्त्रों द्वारा ही उसके स्वरून का निर्णय करते हैं।

अपरे वचनैः पुण्यैर्वादिनों लोकनिक्षयम्।

अनिश्चयज्ञा धर्माणामदृष्टान्ते परे हताः।।4।।

अतः दूसरे वक्ता लोग जो धर्म के त्तव को नहीं जानते, वे सुन्दर युक्तियुक्त वचनों द्वारा लोगों के विश्वास को नष्ट कर तब वे श्रोतागण प्रत्यक्ष उदाहरण न पाकर परलोक में नष्ट–भ्रष्ट हो जाते हैं।

प्रत्यक्षं सुखभूयिष्ठमात्म साक्षिकमच्छलम्।

सर्वलोकहितं धर्मे क्षत्रियेषु प्रतिष्ठितम्।।5।।

जो धर्म प्रत्यक्ष है, अधिक सुखमय है, आत्मा के साक्षित्व से युक्त है, छलरहित है तथा सर्वलोक हितकारी है, वह धर्म क्षत्रियों में प्रतिष्ठित हैं।

धर्माश्रमेऽध्यवसिनां ब्राह्मणानां युधिष्ठिर।

यथा त्रयाणां वर्णानां संख्यातोपश्रुतिः पुरा।।6।।

NOTES

युधिष्ठिर ! जैसे तीनों वर्णों के धर्मों का पहले क्षत्रिय धर्म में अन्तर्भाव बताया गया है, उसी प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति–इन तीनों आश्रमों में स्थित ब्राह्मणों के धर्मों का गार्हस्थ्याश्रम में समावेश होता है।

राजधर्मेष्वनुमता लोकाः सुचरितैः सह।

उदाहृतं ते राजेन्द्र यथा विष्णुं महौजसम्।।7।।

सर्वभूतेश्वरं देवं प्रभुं नारायणं पुरा।

जग्मुः सुबद्बुशः शूरा राजानो दण्डनीतये।।8।।

राजेन्द्र ! उत्तम चरित्रों (धर्मों) सहित सम्पूर्ण लोक राजधर्म में अन्तर्भूत हैं। यह बात मैं तुमसे कह चुका हूँ। किसी समय बहुत से शूरवीर नरेश दण्डनीति की प्राप्ति के लिये सम्पूर्ण भूतों के स्वामी महातेजस्वी सर्वव्यापी भगवान् नारायण देवकी शरण में गये थे।

एकैकमात्मनः कर्म तुमियत्वाऽऽश्रमं पुरा।

राजानः पर्युपासन्त दृष्टान्तवचने स्थिताः।।9।।

वे पूर्वकाल में आश्रम सम्बन्धी एक–एक कर्म की दण्डनीति के साथ तुलना करके संशय में पड़ गये कि इनमें कौन श्रेष्ठ है ? अतः सिद्धान्त जानने के लिये उन राजाओं ने भगवान् की उपासना की थी।

साध्या देवा वसवाश्चाश्विनौ च

रूद्राश्व विश्वे मरूतां गणाश्च।

सृष्टाः पुरा ह्यदिदेवेन देवाः

क्षात्रे धर्मे वर्तन्ते च सिद्धाः।।10।।

साध्यदेव, वसुगण, अश्विनीकुमार, रूद्रगण, विश्वेदेवगण और मरूद्गण ये देवताऔर सिद्धगण पूर्वकाल में आदिदेव भगवान विष्णु के द्वारा रचे गये हैं, जो छात्रधर्म में ही स्थित रहते हैं।

अत्रते वर्तयिष्यामि धर्ममर्थविनिश्चयम्।

निर्मर्यादे वर्तमाने दानवै कार्णिवै पुरा।।11।।

मैं इस विषय में तात्वि अर्थ का निश्चय करने वाला एक धर्ममय इतिहास सुनाऊँगा। पहले की बात है यह सारा जगत् दानवता के समुद्र में निमग्न होकर उच्छृङ्खल हो चला था।

बभूव राजा राजेन्द्र मान्धाता नाम वीर्यवान्।

पुरा वसुमतीपालो यज्ञं चक्रे दिदृक्षया।।12।।

अनादिमध्यनिधनं देवं नारायणं प्रभुम्।

NOTES

राजेन्द्र ! उन्हीं दिनों मान्धाता नाम से प्रसिद्ध तक पराक्रमी पृथ्वी पालक नरेश हुये थे, जिन्होंने आदि, मध्य और अन्त से रहित भगवान् नारायणदेव का दर्शन पाने की इच्छा से एक यज्ञ का अनुष्ठान किया।

स राजा राजशार्दूत मान्धाता परमेश्वरम्।।13।।

जगाम शिरसा पाछौ यज्ञे विष्णोर्महात्मनः।

दर्शयामास तं विष्णु रूपमास्थय वासमय्।।14।।

राजसिंह ! राजा मान्धाता ने उस यज्ञ में परमात्मा भगवान् विष्णु के चरणों की भावना से पृथ्वी पर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया। उस समय श्री हरि ने देवराज इन्द्र का रूप धारण करके उन्हें दर्शन दिया।।13–14।।

स पर्थिवैवृतः सद्भिरर्चयामास तं प्रभुम।

तस्य पार्थिवसिंहस्य तस्य चैव महात्मनः।

संवादोऽयं महानासीद् विष्णुं प्रति महाधुतिम्।।15।।

श्रेष्ठ भूपालों से घिरे हुये मान्धाता ने इन्द्ररूपी भगवान का पूजन किया। फिर उन राजसिंह और महात्मा इन्द्र में महातेजस्वी भगवान विष्णु के विषय में यह महान् संवाद हुआ।।15।।

इन्द्र उवाच :

किमिष्यते धर्मभृतां वरिष्ठ

यद् द्रष्टुकामोऽसि तमप्रमेयम्।

अनन्तमायामितमन्त्रवीर्ये

नारायणं ह्यादिदेवं पुराणम्।।16।।

पुरूष भगवान् नारायण अप्रमेय हैं। वे अपनी अनन्त माया शक्ति, असीम धैर्य तथा अमित बल–पराक्रम से सम्पन्न हैं, तुम जो उनका दर्शन करना चाहते हो, उसका क्या कारण है ? तुम्हें उनसे कौन सी वस्तु प्राप्त करने की इच्छा है ?

नासौ देवो विश्वरूपो मयापि

शक्योद्रष्टुंब्रह्यणा वापि साक्षात्।

येऽन्ये कामास्तव राजन् हृदिस्था

दास्ये चैतांस्त्वं हि मर्त्येषु राजा।।17।।

NOTES

उन विश्व रूप भगवान को मैं और साक्षात् ब्रह्मा जी भी नहीं देख सकते। राजन् ! तुम्हारे हृदय में जो दूसरी कामनायें हों, उन्हें मैं पूर्ण कर दूंगा, क्योंकि तुम मनुष्यों के राजा हो।

सत्ये स्थितो धर्मपरो जितेन्द्रियः

शूरो दृढप्रीतिरतः सुराणाम्।

बुद्धया भक्त्या चोत्तमश्रद्धया च

ततस्तेऽहं ददिन वरान् यथेष्टम्।।18।।

नरेश्वर ! तुम सत्यनिष्ठ, धर्मपरायण, जितेन्द्रिय और शूरवीर हो, देवताओं के प्रति अविचल प्रेमभाव रखते हो, तुम्हारी बुद्धि। भक्ति और उत्तम श्रद्धा से संतुष्ट होकर मैं तुम्हें इच्छानुसार वर दे रहा हूँ।

मान्धाता उवाच :

असंशयं भगवन्नादिदेवं

द्रक्ष्यामित्वाहं शिरसा सम्प्रसाद्य।

त्वयक्त्वा कामान् धर्मकामो हारण्य–

मिच्छे गन्तुं सत्पथं लोकदृष्टम्।।19।।

मान्धाता ने कहा– भगवन ! मैं आपके चरणों में मस्तक झुकाकर आपको प्रसन्न करके आपकी ही दया से आदि देव भगवान् विष्णु का दर्शन प्राप्त कर लूंगा। इसमें संशय नहीं है। इस समय मैं समस्त कामनाओं का परित्याग करके केवल धर्मसम्पादन की इच्छा रखकर वन में जाना चाहता हूं, क्योंकि लोक में सभी सत्पुरूष अन्त में इसी सन्मार्ग का दिग्दर्शन करा गये हैं।

क्षात्राद् धर्माद विपुलाद्प्रमेया–

ल्लोकाः प्राप्ताः स्थापितं स्वं यशश्च।

धर्मो योऽसावादिदेवात् प्रवृत्तो

लोकश्रेष्ठं तं न जानामि कर्तुम्।।20।।

विशाल एवं अप्रमेय क्षात्रधर्म के प्रभाव से मैंने उत्तम लोक प्राप्त किये और सर्वत्र अपने यश का प्रचार एवं प्रसार कर दिया, परंतु आदिदेव भगवान् विष्णु से जिस धर्म की प्रवृत्ति हुई है, उस लोक श्रेष्ठ धर्म का आचरण करना मैं नहीं जानता।

NOTES

इन्द्र उवाच :

असैनिका धर्मपराश्च धर्मे

परां गतिं न नयन्ते ह्ययुक्तम्।

क्षात्रो धर्मो ह्यादिदेवात् प्रवृत्तः

पश्चादन्ये शेषभूताश्च धर्माः।।21।।

इन्द्र बोले– राजन् ! आदिदेव भगवान विष्णु से तो पहले राजधर्म ही प्रवृत्त हुआ है। अन्य सभी धर्म उसी के अंग हैं और उसके बाद प्रकट हुये हैं। जो सैनिक शक्ति से सम्पन्नराजा नहीं है, वे धर्म परायण होने पर भी दूसरों को अनायास ही धर्मविषयक परमगति की प्राप्ति नहीं करा सकते।

शेषाः सृष्टाह्यन्तवन्तो ह्यनन्ताः

सप्रस्थानाः क्षात्रधर्मा विशिष्टाः।

अस्मिन् धर्म सर्वधर्माः प्रविष्टा

स्तस्याद् धर्मं श्रेष्ठमिमं वदन्ति।।22।।

क्षात्र–धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। शेष धर्म असंख्य हैं और उनका फल भी विनाशील है। इस क्षात्रधर्म में सभी धर्मों का समावेश हो जाता है, इसलिये इसी धर्म को श्रेष्ठ कहते हैं।

कर्मणा वै पुरा देवाज्मृषयश्चामितौजसः।

त्राताः सर्वे प्रसह्यारीन् क्षात्रधर्मेण विष्णुना।।23।।

पूर्वकाल में भगवान विष्णु ने क्षात्रधर्म के द्वारा ही शत्रुओं का दमन करके देवताओं तथा अमित तेजस्वी समस्त ऋषियों की रक्षा की थी।

यदि ह्यसौ भगवान् नाहनिष्यद्

रिपून् सर्वानसुरानप्रमेयः।

न ब्राह्मणा न च लोकादिकर्ता

नायं धर्मो नादिधर्मोऽभविष्यत्।।24।।

यदि वे अप्रमेय भगवान् श्रीहरि समस्त शत्रुरूप असुरों का संहार नहीं करते तो न कहीं ब्राम्हणों का पता लगता, न जगत के आदिस्रष्टा ब्रम्हाजी ही दिखाई देते। न यह धर्म रहता और न आदि धर्म का ही पता लग सकता था।

NOTES

इमायुर्वी नाजयद् विक्रमेण

देवश्रेष्ठः सासुरामादिदेवः।

चातुवर्ण्यं चातुराश्रम्यधर्माः

सर्वेन स्युब्रह्मिणानां विनाशात्।।25।।

देवताओं में सर्वश्रेष्ठ आदिदेव भगवान विष्णु असुरों सहित इस पृथ्वी को अपने बल और पराक्रम से जीत नहीं लेते तो ब्राम्हणों का नाश हो जाने से चारों वर्ण और चारों आश्रमों के सभी धर्मों का लोप हो जाता।

नष्टा धर्माः शतधा शाश्वतास्ते

क्षात्रेण धर्मेण पुनः प्रवृद्धाः।

युगे युगे ह्मदिधर्माः प्रवृत्ता

लोकज्येष्ठं क्षात्रधर्मं बदन्ति।।26।।

वे सदा से चले आने वाले धर्म सैकड़ों बार नष्ट हो चुके हैं। परन्तु क्षात्र धर्म ने उनका पुनः उद्धार एवं प्रसार किया है। युग–युग में आदि धर्म (क्षात्र धर्म) की प्रवृत्ति हुयी है, इसलिये इस क्षात्रधर्म को लोक में सबसे श्रेष्ठ बताते हैं।

आत्मत्यागः सर्वभूतानुकम्पा

लोकज्ञानं पालनं मोक्षणं च।

विषण्णानां मोक्षणं पीडितानां

क्षात्रे धर्मे विद्यते पार्थिवानाम्।।27।।

युद्ध में अपने शरीर की आहुति देना, समस्त प्राणियों पर दया करना, लोक व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करना, प्रजा की रक्षा करना, विवादग्रस्त एवं पीड़ित मनुष्यों को दुःख और कष्ट से छुड़ाना, ये सब बातें राजाओं के क्षात्र धर्म में ही विद्यमान हैं।

निर्मर्यादाः कामनन्युप्रवृत्ता

भीताराज्ञोनाधिगच्छन्ति पापम्।

शिष्टाश्चान्ये सर्वधर्मोपपन्नाः

साध्वाचाराः साधु धर्म वदन्ति।।28।।

जो लोग काम, क्रोध में फंसकर उच्छृङ्खल हो गये हैं, वे भी राजा के भय से ही पाप नहीं कर पाते हैं तथा जो सब प्रकार के धर्मों का पालन करने वाले श्रेष्ठ पुरूष हैं, वे राजा से सुरक्षित हो सदाचार का सेवन करते हुये धर्म का सदुपदेश करते हैं।

NOTES

पुत्रवत पाल्यमानानि राजधर्मेण पार्थिवः

लोके भूतानि सर्वाणि चरन्ते नात्र संशय।।29।।

राजाओं से राजधर्म के द्वारा पुत्र की भांति पालित होने वाले जगत् के सम्पूर्ण प्राणी निर्भय विचरते हैं, इसमें संशय नहीं है।

सर्वधर्मपरं क्षात्रं लोकश्रेष्ठं सनातमन्।

शश्वदक्षरपर्यन्तमक्षरं सर्वतोमुखम्।।30।।

इस प्रकार संसार में क्षात्रधर्म ही सब धर्मों से श्रेष्ठ, सनातन, नित्य, अविनाशी, मोक्ष तक पहुंचाने वाला सर्वतोमुखी है।

NOTES

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः (65वाँ अध्याय)

इन्द्ररूप धारी विष्णु और मान्धाता का संवाद

इन्द्र उवाच :

एवंवीर्यः सर्वधर्मोपपन्नः
क्षात्रः श्रेष्ठः सर्वधर्मेषु धर्मः।
पाल्यो युष्माभिर्लोकहितैरूदारै–
विपर्यये स्यादभवः प्रजानाम्।।1।।

इन्द्र कहते हैं– राजन् ! इस प्रकार क्षात्रधर्म सब धर्मों से श्रेष्ठ और शक्तिशाली है। यह सभी धर्मों से सम्पन्न बताया गया है। तुम–जैसे लोक हितैषी उदार पुरूषों को सदा इस क्षात्र धर्म का ही पालन करना चाहिये यदि उत्रइसका पालन नहीं किया जायेगा तो प्रजा का नाश हो जायेगा।

भूसंस्कारं राजसंस्कारयोग–
मभैक्ष्यचर्या पालनं च प्रणानाम्।
विद्याद् राजा सर्वभूतानुकम्पी
देहत्याग चाहवे धर्ममग्न्यम्।।2।।

समस्त प्राणियों पर दया करने वाले राजा को उचित है कि वह नीचे लिखे हुये कार्यों को ही श्रेष्ठ धर्म समझे। वह पृथ्वी का संस्कार करावे, राजसूय अश्व मेधादि यज्ञों में अवभृतत्नान करे, भिक्षा का आश्रय न ले, प्रजा का पालन करे और संग्राम भूमि में शरीर को त्याग दे।

त्यागं श्रेष्ठं मुनयो वै वदन्ति
सर्वश्रेष्ठं यच्छरीरं त्यजन्तः।
नित्यं युक्ता राजद्यर्मेषु सर्वे
प्रत्यक्षं ते भूमिपाला यथैव।।3।।

ऋषि मुनि त्याग को ही श्रेष्ठ बताते हैं। उसमें भी युद्ध में राजालोग जो अपने शरीर का त्याग करते हैं, वह सबसे श्रेष्ठ त्याग है। सदा राजधर्म में संलग्न रहने वाले समस्त भूमिपालों ने जिस प्रकार युद्ध में प्राण–त्याग किया है, वह सब तुम्हारी आंखों के सामने है।

बहुश्रुत्या गुरूशुश्रूया च

परस्परं संहननाद बदन्ति।

नित्यं धर्म क्षत्रियों ब्रम्हचारी

चरेदेको द्यश्रमं धर्मकामः।।4।।

क्षत्रिय ब्रह्मचारी धर्मपालन की इच्छा रखकर अनेक शास्त्रों के ज्ञान का उपार्जन तथा गुरूशुश्रूया करते हुये अकेला ही नित्य ब्रम्हचर्य–आश्रम के धर्म का आचरण करे। यह बात ऋषि लोग परस्पर मिलकर कहते हैं।

सामान्यार्थे व्यवहारे प्रवृत्ते

प्रियाप्रिये वर्जयन्नेव यत्नात्।

चातुवर्ण्यस्थापनात् पालनाच्च

तैस्तैर्योगैर्नियमैरौरसैश्च।।5।।

सर्वोद्योगैराश्रमं धर्ममाहुः

क्षात्रं श्रेष्ठं सर्वधर्मोपपन्नम्।

स्वं स्वं धर्म येन चरन्ति वर्णा–

स्तांस्तान् धर्मानन्यथार्थान् वदन्ति।।6।।

जन साधारण के लिये व्यवहार आरम्भ होने पर राजा प्रिय और अप्रिय की भावना का प्रयत्नपूर्वक परित्याग करे। भिन्न–भिन्न उपायों, नियमों, पुरूषार्थों तथा सम्पूर्ण उद्योगों के द्वारा चारों वर्णों की स्थापना एवं रक्षा करने के कारण क्षा–धर्म एवं ग्रहस्थ आश्रम को ही सबसे श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण धर्मों से सम्पन्न बताया गया है, क्योंकि सभी वर्णों के लोग उस क्षात्रधर्म के सहयोग से ही अपने अपने धर्म का पालन करते हैं। क्षत्रिय धर्म के न होने से उन सब धर्मों का प्रयोजन विपरीत होता है, ऐसा कहते हैं।।5–6।।

निर्भर्यादान् नित्यमर्थे निविष्टा–

नाहुस्तांस्तान् वै पशुभूतान् मनुष्यान्।

यथा नीतिं गमयत्यर्थयोगा–

च्छ्रेयस्तमादाश्रमात् क्षत्रधर्मः।।7।।

जो लोग सदा अर्थ साधन में ही आसक्त होकर मर्यादा छोड़कर बैठते हैं, उन मनुष्यों को पशु कहा गया है। क्षत्रिय–धर्म अर्थ की प्राप्ति कराने के साथ–साथ उत्तम नीति का ज्ञान प्रदान करता है, इसलिये वह आश्रम–धर्मो से भी श्रेष्ठ है।

त्रैविधानां या गतिब्राह्मणानां

ये चैवोक्ताक्षाश्रमा ब्राह्मणानाम्।

एतत कर्म ब्राह्मणस्पाहुरग्रय–

मन्यत् कुर्वञ्छूद्रवच्छस्त्रवध्यः।।8।।

NOTES

तीनों वेदों के विद्वान् ब्राह्मणों के लिये जो यज्ञादि कार्य विहित हैं तथा उनके लिये जो चारों आश्रम बताये गये हैं– उन्हीं को ब्राह्मण का सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा गया है इसके विपरीत आचरण करने वाला ब्राह्मण शूद्र के समान ही शस्त्रों द्वारा वध के योग्य है।

चातुराश्रम्यधर्माश्च वेदधर्माश्च पार्थिव।
ब्राह्मणेनानु गन्तव्या नान्यो विद्यात् कदाचन।।9।।

राजन ! चारों आश्रमों के जो धर्म है तथा वेदों में जो धर्म बताये गये हैं उन सबका अनुसरण ब्राह्मण को ही करना चाहिये। दूसरा कोई शूद्र आदि कभी किसी तरह भी उन धर्मों का नहीं जान सकता।

अन्यथा वर्तमानस्य नासौवृत्तिः प्रकल्प्यते।
कर्मणा वर्धते धर्मो यथाधर्मस्तथैव सः।।10।।

जो ब्राह्मण इसके विपरीत आचरण करता है, उसके लिये ब्राह्मणोचित वृत्ति की व्यवस्था नहीं की जाती। कर्म से ही धर्म की वृद्धि होती है, जो जिस प्रकार के धर्म को अपनाता है, वह वैसा ही हो जाता है।

यो विकर्मस्थितो विप्रो न स सम्मानमर्हतिं।
कर्म स्वं नोपयुञ्जानमविश्वास्यं हि तं विदुः।।11।।

जो ब्राह्मण विरीत कर्म में स्थित होता है, वह सम्मान पाने का अधिकारी नहीं है। अपने कर्म का आचरण न करने वाले ब्राह्मण को विश्वास न करने योग्य माना गया है।

एते धर्माः सर्ववर्णेषु लीना
उत्क्रष्टव्याः क्षत्रियैरेव धर्मः।
तस्माज्येष्ठा राजधर्मा न चान्ये
वीर्यज्येष्ठा वीरधर्मा मता मे।।12।।

समस्त वर्णों में स्थित हुये जो ये धर्म हैं, उन्हें क्षत्रियों को उन्नति के शिखर पर पहुंचाना चाहिये यही क्षत्रिया धर्म है, इसीलिये राजधर्म श्रेष्ठ है। दूसरे धर्म इस प्रकार श्रेष्ठ नहीं है। मेरे मत में वीर क्षत्रियों के धर्मो में बल और पराक्रम की प्रधानता है।

मान्धातोवाच :

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः।

शकास्तुषाराः कङ्काक्ष पहल्वाक्षान्ध्रमद्रकाः।।13।।

पौण्ड्राः पुलिन्दा रमणः काम्बोजाश्चैव सर्वशः।

ब्रह्मक्षत्र प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राक्ष मानवाः।।14।।

कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः।

मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वे वै दस्युजीविनः।।15।।

NOTES

मान्धाता बोले– भगवन् ! मेरे राज्य में यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पल्लव, आन्ध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज देशों के निवासी म्लेच्छगण सब ओर निवास करते हैं। कुछ ब्राह्मणों और क्षत्रियों की भी संताने हैं, कुछ वैश्य और शूद्र भी हैं, जो धर्म से गिर गये हैं। ये सब के सब चोरी और डकैती से जीविका चलाते हैं। ऐसे लोग किस प्रकार धर्मों का आचरण करेंगे ? मेरे–जैसे राजाओं को इन्हें किस तरह मर्यादा के भीतर स्थापित करना चाहिये ?

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं भगवंस्तद् ब्रवीहि में।
त्वं बन्धुभूतो ह्यस्माकं क्षत्रियाणां सुरेश्वर।।16।।

भगवन् ! सुरेश्वर ! यह मैं सुनना चाहता हूं। आप मुझे यह सब बताइये, क्योंकि आप ही हम क्षत्रियों के बन्धु हैं।

इन्द्र उवाच :

मातापित्रोर्हि शुश्रूषा कर्तव्या सर्वदस्युभिः।
आचार्यगुरूशुश्रूषा तथैवाश्रमवासिनाम्।।17।।

इन्द्र ने कहा– राजन् ! जो लोग दस्यु–वृत्ति से जीवन निर्वाह करते हैं, उन सबको अपने माता–पिता, आचार्य, गुरू तथा आश्रमवासी मुनियों की सेवा करनी चाहिये।

भूमिपानां च शुश्रूषा कर्तव्या सर्वदस्युभिः।
वेद धर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते।।18।।

भूमिपालों की सेवा करना भी समस्त दस्युओं का कर्तव्य है। वेदोक्त धर्मकर्मों का अनुष्ठान भी उनके लिये शास्त्रविदित धर्म है।

पितृयज्ञास्तथा कूपाः प्रपाक्ष शयनानि च।
दानानि च यथाकालं द्विजेभ्यो विसृजेत सदा।।19।।

पितरों का श्राद्ध करना, कुंआ खुदवाना, जलक्षेत्र चलाना और लोगों के ठहरने के लिये धर्मशालाएं बनवाना भी उनका कर्तव्य है। उन्हें यथासमय ब्राह्मणों को दान देते रहना चाहिये।

अहिंसा सत्यमक्रोधो वृत्तिदायानुपालनम्।
भरणं पुत्रदाराणं शौचमद्रोह एवं च।।20।।

NOTES

अहिंसा, सत्यभाषण, क्रोधशून्य बर्ताव, दूसरों की आजीविका तथा बंटवारे में मिली हुई पैतृक सम्पत्ति की रक्षा, स्त्री–पुत्रों का भरण–पोषण, बाहर भीतर की शुद्धि रखना तथा द्रोह भाव का त्याग करना– यह उन सबका धर्म है।

दक्षिणा सर्वयज्ञानां दातव्या भूतिभिच्छता
पाकयज्ञा महार्हाश्च दातव्याः सर्वदस्युभिः।।21।।

कल्याण की इच्छा रखने वाले पुरूष को सब प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करके ब्राह्मणों को भरपूर दक्षिणा देनी चाहिये। सभी दस्युओं को अधिक खर्च वाला पाक यज्ञ करना और उसके लिये धन देना चाहिये।

एतान्येवंप्रकाराणि विहितानि पुरानघ।
सर्वलोकस्य कर्माणि कर्तव्यानीह पार्थिव।।22।।

निष्पाप नरेश ! इस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा ने सब मनुष्यों के कर्तव्य पहले ही निर्दिष्ट कर दिये हैं। उन दस्युओं को भी यथावत रूप से पालन करना चाहिये।

मान्धातोवाच :

दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेसु दस्यवः।
लिङ्गान्तरे वर्तमाना आश्रमेषु चतुर्ष्वपि।।23।।

मान्धाता बोले– भगवन् ! मनुष्य लोक में सभी वर्गों तथा चारों आश्रमों में भी डाकू और लुटेरे देखे जाते हैं, जो विभिन्न वेशभूषाओं में अपने को छिपाये रखते हैं।

इन्द्र उवाच :

विनष्टायां दण्डनीत्यां राजधर्मे निराकृते।
सम्प्रमुघ्नन्ति भूतानि राजदौरात्म्यतोऽनघ।।24।।

इन्द्र बोले– निष्पाप नरेश ! जब राजा की दुष्टता के कारण दण्डनीति नष्ट हो जाती है और राजधर्म तिरस्कृत हो जाता है, तब सभी प्राणी मोहवश कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेक खो बैठते हैं।

असंख्याता भविष्यति भिक्षवो लिङ्गिनस्तथा।
आश्रमाणां विकल्पाश्च निवृत्तेऽस्मिन् कृत युगे।।25।।

इस प्रकार सत्ययुग के समाप्त हो जाने पर नानावेषधारी असंख्य भिक्षुक प्रकट हो जायेंगे और लोग आश्रमों के स्वरूप की विभिन्न मनमानी कल्पना करने लगेंगे।

अश्रृण्वानाः पुराणानां धर्माणां परमा गतीः।
उत्पथं प्रतिपत्स्यप्ते काममन्युसमीरिताः।।26।।

NOTES

लोग काम और क्रोध से प्रेरित होकर कुमार्ग पर चलने लगेंगे। वे पुराणप्रोक्त प्राचीन धर्मों के पालन का जो उत्तम फल है, उस विषय की बात नहीं सुनेंगे।

यदा निवर्त्यते पापो दण्डनीत्या महात्मभिः।
तदा धर्मो न चलते सम्भूतः शाश्वतः परः।।27।।

जब महामनस्वी राजा लोग दण्डनीति के द्वारा पापी को पाप करने से रोकते है, तब सत्स्वरूप परमोत्कृष्ट सनातन धर्म का ह्रास नहीं है।

सर्वलोक गुरूं चैव राजानं योऽवमन्यते।
न तस्य दत्तं न हुतं न श्राद्धं फलते क्वचित्।।28।।

जो मनुष्य सम्पूर्ण लोकों के गुरू रूप राजा का अपमान करता है उसके किये दान, होम और श्राद्ध कभी सफल नहीं होते हैं।

मानुषाणामधिपतिं देवभूतं सनातनम्।
देवापि नावमन्यन्ते धर्मकामं नरेश्वरम्।।29।।

राजा मनुष्यों का अधिपति, सनातन देवस्वरूप तथा धर्म की इच्छा रखने वाला होता है। देवता भी उसका अपमान नहीं करते हैं।

प्रजापतिर्हि भगवान् सर्वं चैवासृजज्जगत्।
स प्रवृत्ति निवृत्यर्थं धर्माणा क्षत्रभिच्छति।।30।।

भगवान प्रजापति ने जब इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की थी, उस समय लोगों को सत्कर्म में लगाने और दुष्कर्म से निवृत्त करने के लिये उन्होंने धर्मरक्षा हेतु क्षात्रबल को प्रतिष्ठित करने–की अभिलाषा की थी।

प्रवृत्तस्य हि धर्मस्य बुद्धया यः स्मरते गतिम्।
स मे मान्यश्च पूज्यश्च तत्र क्षत्रं प्रतिष्ठितम्।।31।।

जो पुरूष प्रवृत्त धर्म की गति का अपनी बुद्धि से विचार करता है, वहीं मेरे लिये माननीय और पूजनीय है, क्योंकि उसी में क्षात्रधर्म प्रतिष्ठित है।

भीष्म उवाच :

एवमुक्त्वा स भगवान मरूद्गणवृतः प्रभुः।
जगाम भवनं विष्णोरक्षरं शाश्वतं पदम्।।32।।

NOTES

भीष्म जी कहते हैं– राजन् ! मान्धातों को इस प्रकार उपदेश देकर इन्द्ररूपधारी भगवान् विष्णु मरूद्गणों के साथ अविनाशी एवं सनातन परमपद विष्णुधाम को चले गये।

एवं प्रवर्तिते धर्मे पुरा सुचरितेऽनद्य
कः क्षत्रमवमन्येत चेतनावन बहुश्रुतः।।33।।

निष्पाप नरेश्वर ! इस प्रकार प्राचीन काल में भगवान विष्णु ने ही राजधर्म को प्रचलित किया और सत्पुरूषों द्वारा वह भलीभांति आचरण में लाया गया। ऐसी दशा में कौन ऐसा सचेत और बहुश्रुत विद्वान होगा, जो क्षात्र–धर्म की अवहेलना करेगा।

सूची प्रश्न :

निम्नांकित श्लोकों में से किसी एक श्लोक की ससंदर्भ व्याख्या कीजिए।

प्र.1. ततो आश्रमाणां ..... युधिष्ठिर।।

प्र.2. ब्रह्मचारी व्रती ..... वसेत् सदा।।

प्र.3. अहिंसा ..... एवच।।

प्र.4. यदा ..... शाश्वतः परः।।

प्र.5. महाभारत के वैशिष्ट्रय पर प्रकाश डालिये।

प्रदत्त कार्य :

ब्राह्मण धर्म एवं राजधर्म की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

इन्द्ररूपधारी विष्णु और मान्धाता संवाद का विवेचन कीजिये।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. वाल्मीकि रामायण – महर्षि वाल्मीकि प्रणीत, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. महाभारत – महर्षि वेदव्यास प्रणीत, गीता प्रस, गोरखपुर
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
4. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – आ. कपिलदेव द्विवेदी